कुरुक्षेत्र

वार्षिक अंक
अक्तूबर 1982

मूल्य : 1 रुपया

संपादकीय

ग्रामीण विकास के लिए नए प्रयास

बीस सूत्री कार्यक्रम 1975 में प्रारम्भ किया गया था और इसका उद्देश्य देश के विभिन्न वर्गों की कठिनाइयां दूर करना तथा गांवों के गरीबों, दलितों तथा पीड़ितों को ऊपर उठाना था। हम यह नहीं कहते कि कार्यक्रम पूर्णतः सफल रहा परन्तु इसके बहुत से लक्ष्य पूरे कर लिए गए हैं। 1976 में बंधुआ मजदूरी समाप्त करने का कानून बना दिया गया। तस्करों की सम्पत्ति जप्त करने के उपाय किए गए। इस कार्यक्रम के फलस्वरूप लोगों की आर्थिक स्थिति में भी सुधार आया। 50 लाख हेक्टेयर जमीन में सिंचाई का लक्ष्य पूरा कर लिया गया। परन्तु अब चूंकि लोगों की आर्थिक और सामाजिक स्थिति में काफी परिवर्तन आ गया है और नई चुनौतियां सामने आई हैं, अतः यह जरूरी समझा गया कि इस कार्यक्रम को नया रूप दिया जाए। अतः प्रधानमंत्री द्वारा 14 जनवरी, 1982 को नए 20 सूत्री कार्यक्रम की घोषणा की गई।

इस कार्यक्रम का विशेष बल गांवों के गरीबों को ऊपर उठाने, गांवों के विकास की प्रक्रिया में तेजी लाने, ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम के ठीक कार्यान्वियन तथा बंधुआ मजदूरों के पुनर्वास आदि कार्यक्रमों पर है। कार्यक्रम की गतिविधियों में काफी तेजी आ गई है और सरकारी तंत्र बड़े निष्ठापूर्वक इसके कार्यान्वियन की कार्यवाहियों में जुट गया है। जहां तक इन कार्यक्रमों के लिए धन उपलब्ध करने का संबंध है, उसमें उत्तरोत्तर वृद्धि की जा रही है। पिछले वर्ष की योजना के लिए जितनी राशि नियत की गई थी उसकी अपेक्षा 1982–83 की योजना में 21 प्रतिशत की वृद्धि कर दी गई है। गरीबी उन्मूलन के विभिन्न विकास कार्यों के लिए तो इस राशि में से अधिक से अधिक परिव्यय की व्यवस्था की गई है। समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत प्रत्येक विकास खंड में धन की व्यवस्था 6 लाख रुपये से बढ़ा कर 8 लाख रुपये कर दी गई है।

राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम को मजबूत बनाया जा रहा है और 1982–83 में इस कार्यक्रम के लिए 190 करोड़ रुपये की व्यवस्था की गई है। अनुसूचित जातियों और अनसूचित जन जातियों के लिए विशेष कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं और छोटी सिचाई, मृदा-संरक्षण, सामाजिक वानिकी, आदि कार्यक्रमों को भी तेज गति प्रदान की जा रही है।

जहां तक शिक्षा का संबंध है, स्कूलों में 14 वर्ष की आयु समूह के बच्चों की संख्या में 40 लाख की और बढ़ोत्तरी हो जाएगी जबकि प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम के अन्तर्गत 60 लाख से अधिक प्रौढ़ों को शामिल कर लिया जाएगा, परन्तु ग्रामीण शिक्षा की स्थिति बड़ी दयनीय है। पहले तो अधिकांश ग्रामीण अपने बच्चों को पाठशालाओं में भेजने से वैसे ही कतराते हैं और जो भेजते भी हैं उन्हें वहां ठीक-ठीक शिक्षा नहीं मिलती। यह निर्विवाद है कि व्यक्ति के जीवन निर्माण में प्राथमिक शिक्षा आधारशिला का काम करती है। उस समय जैसे संस्कार बच्चे के दिमाग पर पड़ेंगे वैसा ही बनेगा। अतः जरूरत है कि हमारी प्राथमिक शिक्षा व्यवस्था में मूलभूत परिवर्तन किए जाएं। गांवों के बच्चे देश की सम्पदा हैं। उन्हें शिक्षित तथा सभ्य-शिष्ट नागरिक बनाना हमारा कर्त्तव्य है और इसके लिए जरूरी है कि गांवों में शिक्षा का नया कार्यक्रम शुरू किया जाए। पाठ्यक्रम में नैतिक तथा कारीगरी की शिक्षा को प्राथमिकता दी जाए। कारीगरी की शिक्षा का अर्थ होगा गांवों में उद्योग धंधों को प्रोत्साहन और ग्रामीण बेरोजगारी की समस्या का समाधान।

सफाई स्वास्थ्य और पेय जल

जहां तक सफाई, स्वास्थ्य और पेय जल का संबंध है, हमारी सरकार इस समस्या के समाधान के लिए कृतसंकल्प है। हवा, पानी और अनाज जीवन की मूलभूत आवश्यकताएं हैं। अनाज के बिना आदमी कुछ दिनों तक जिन्दा रह सकता है, लेकिन हवा-पानी के बिना अधिक देर तक जिन्दा रहना संभव नहीं। औद्योगिक विकास के कारण सभी देशों का पर्यावरण दूषित होता जा रहा है। इसके कारण सफाई, स्वास्थ्य और शुद्ध पेयजल की समस्या बड़ी विकट बन गई है। शुद्ध जल-पूर्ति के अभाव में आदमी का स्वस्थ रहना असंभव है। इससे विकास कार्यों में रुकावट आती है। प्रायः यह देखा गया है कि जहां शुद्ध जल-पूर्ति की व्यवस्था सुचारू रूप से चालू है वहां लोग आर्थिक दृष्टि से समृद्ध हुए हैं। राज-

[शेष आवरण पृष्ठ 3 पर]

कुरुक्षेत्र

ग्रामीण विकास का प्रमुख मासिक

वर्ष 27 आश्विन–कार्तिक 1904 अंक 12

इस अंक में | पृष्ठ संख्या

गांधी जी और ग्रामीण भारत — 2
यशपाल जैन

ग्रामीण विकास की प्रगति का लेखा-जोखा — 4
जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी

प्रयोगशाला से खेतों तक — 8
रमेश दत्त शर्मा

बीस सूत्री आर्थिक कार्यक्रम नए परिप्रेक्ष्य में — 10
वासुदेव झा

ग्रामीण विकास में सहकारी संस्थाओं का योग — 12
राकेश कुमार अग्रवाल

मानव की सेवा में कृषि वानिकी — 15
रूपनारायण काबरा

जीवन मेरे गांव में (कविता) — 17
भगवती प्रसाद गौतम

कृषि में सांख्यिकीय अनुसंधान का महत्व — 18
अखिलेन्द्र पाल सिंह

बन्धुआ मजदूरों के पुनर्वास की समस्या — 19
लक्ष्मी धर मिश्र

परिवर्तन की ओर अग्रसर हमारे आदिवासी — 24
जगमोहन लाल माथुर

मेरा गांव (कविता) — 27
रामजी पाण्डेय

बन्धुआ मजदूरों का पुनर्वास — 28
आलोक सिंह

रोजगार गारंटी योजना : एक अध्ययन — 29
के० एम० नायडू, के० शेषैया तथा बी० एस० मूर्ति

केन्द्रीय भवन अनुसंधान संस्थान रुड़की द्वारा ग्रामीण आवास समस्या का समाधान — 31
डा० योगेन्द्रनाथ शर्मा 'अरुण'

कोटा जिला में ट्राइसेम के अंतर्गत अनुकरणीय उपलब्धियां — 33
प्रभात कुमार सिंघल

सार्वजनिक वितरण प्रणाली : गरीब का सहारा — 35
महेश चन्द शर्मा

कच्छ में पेयजल समस्या — 39
अखिलेश्वर तिवारी

केन्द्र के समाचार — 40

साहित्य समीक्षा — 41

स्वरोजगार के लिए ग्रामीण युवकों को प्रशिक्षण — 43
सत्यदेव नारायण

'कुरुक्षेत्र' के लिए मौलिक लेख, कहानी, एकांकी, कविता, संस्मरण, हास्य-व्यंग्य चित्र आदि भेजिए।

अस्वीकृत रचनाओं की वापसी के लिए टिकट लगा व पता लिखा लिफाफा साथ आना आवश्यक है।

●

'कुरुक्षेत्र' की एजेन्सी लेने, ग्राहक बनने, पता बदलने या अंक न मिलने की शिकायत व्यापार व्यवस्थापक प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001 से कीजिए।

सम्पादकीय पत्र-व्यवहार : सम्पादक, कुरुक्षेत्र (हिन्दी), ग्रामीण विकास मन्त्रालय 467, कृषि भवन, नई दिल्ली के पते पर करें।

एक प्रति 1 रु० वार्षिक चन्दा 10 रु०

व्यापार व्यवस्थापक: एस० एल० जायसवाल

सहायक व्यापार व्यवस्थापक : एल० आर० बत्रा

सहायक निदेशक (उत्पादन) : के० आर० कृष्णन

दूरभाष : 382406

सम्पादक : महेन्द्र पाल सिंह

उपसम्पादक : राधे लाल

आवरण पृष्ठ : परमार

गांधी जी और ग्रामीण भारत

यशपाल जैन

"मेरा विश्वास है और मैंने इस बात को असंख्य बार दोहराया है कि भारत अपने चंद शहरों में नहीं, बल्कि सात लाख गांवों में बसा हुआ है, लेकिन हम शहरवासियों का ख्याल है कि भारत शहरों में ही है और ग्रामों का निर्माण शहरों की जरूरतें पूरी करने के लिए ही हुआ है। मैंने पाया कि शहरवासियों ने आमतौर पर ग्रामवासियों का शोषण किया है। सच तो यह है कि शहरवासी ग्रामवासियों की मेहनत पर जीते हैं।"

ये विचार महात्मा गांधी ने अपने पत्र 'हरिजन' के 4 अप्रैल, 1936 के अंक में प्रकट किए थे। उनकी यह धारणा तो बहुत अरसे से बन गई थी। अपनी पैनी निगाह से उन्होंने देख लिया था कि गांवों के उत्थान पर ही देश का उत्थान निर्भर करता है। इस दिशा में उन्होंने पहला कदम स्वयं अपने जीवन में उठाया। दक्षिण अफ्रीका से लौटकर अपने 'सत्याग्रह आश्रम' की स्थापना के लिए उन्होंने अहमदाबाद के निकट साबरमती को चुना और कुछ दिन अहमदाबाद नगरी के कोचरब मोहल्ले में रहकर अपने इने-गिने साथियों को लेकर वहां चले गए। इतना ही नहीं, उन्होंने स्वयं ग्रामीण का बाना धारण किया, रहन-सहन उसी प्रकार का बनाया और अपने आश्रम को भी वही रूप दिया। आश्रमवासी अपना सारा काम स्वयं करते थे, श्रम करना सबके लिए अनिवार्य था और जीवन उनका ग्रामीणों की तरह सादा और सच्चा था। टट्टियों की सफाई करना, कुएं से पानी भरना, रसोई बनाना आदि ये सब कार्यक्रम तो उनके थे ही, लेकिन चर्खा चलाना, कपास ओटना, सूत तैयार करना, कपड़ा बुनना, यह सब भी वहां होता था। साबरमती आश्रम भारत के उस गांव का नमूना था, जिसका स्वप्न गांधीजी के मानस-पटल पर अंकित था। वह चाहते थे कि गांवों में सफाई हो, स्वच्छता हो, लोग अंध-विश्वासों से मुक्त हों, उनके लिए शिक्षा और उपचार की उत्तम व्यवस्था हो और वे स्वयं पूरित इकाई बनें। अपने आश्रम को उन्होंने उसी ढांचे में ढाला था। वास्तव में गांधी जी की विशेषता यह थी कि जब तक वह किसी चीज को अपने जीवन की कसौटी पर नहीं कस लेते थे, तब तक उसका सार्वजनिक प्रयोग नहीं करते थे।

शहरों का जैसे-जैसे विकास हो रहा था, गांवों की जड़ें सूख रही थीं। गांधी जी की उंगलियां सदा देश की नाड़ी पर रहती थीं। पिचासी प्रतिशत आबादी की, जो गांवों में रहती थी, गरीबी और दीनता उन्हें असह्य थी। दक्षिण अफ्रीका से लौटने के कुछ समय बाद जब उन्होंने देश का दौरा किया था तो उनके सामने गरीबी और शोषण के ऐसे दृश्य आए थे कि उनकी आत्मा चीत्कार कर उठी थी। आजीवन एक चादर और घुटनों तक धोती इस्तेमाल करने की प्रतिज्ञा उनकी उसी व्यथा का परिणाम थी।

बड़े दूरदर्शी थे वह। उन्होंने देख लिया कि देश की आत्मा जाग उठी है तो उसे स्वतन्त्रता मिलकर ही रहेगी, लेकिन जब तक अमीरी-गरीबी की खाई, ऊंच-नीच का भेद, धार्मिक असहिष्णुता, निरक्षरता आदि व्याधियां रहेंगी तब तक देश की बुनियाद पक्की नहीं होगी और स्वतन्त्रता की रक्षा करना असंभव हो जाएगा।

इन बुराइयों को दूर करने के लिए उन्होंने जिन अठारह सूत्री रचनात्मक कार्यक्रमों का निर्धारण किया और संचालन किया उनमें भी उनका लक्ष्य ग्रामोत्थान का ही रहा। उन कार्यक्रमों में उन्होंने कौमी एकता, अस्पृश्यता निवारण, मद्यनिषेध, खादी, ग्रामोद्योग, गांवों की सफाई, आर्थिक समानता, किसान, मजदूर, आदिवासी आदि को प्रमुख स्थान दिया। खादी के द्वारा वह देश में आर्थिक स्वतन्त्रता सम्पादित करने के उद्देश्य की पूर्ति के लिए संपूर्ण स्वदेशी की भावना की अभिवृद्धि करना चाहते थे। ग्रामोद्योगों की कल्पना के द्वारा वह हाथ से पीसना, हाथ से कूटना और साबुन बनाना, कागज बनाना, दियासलाई बनाना, चमड़ा कमाना, तेल पेरना और इस प्रकार के उन अन्य धंधों को प्रोत्साहन देना चाहते थे, जो सामाजिक जीवन के लिए आवश्यक और महत्वपूर्ण थे और जिनके बिना ग्रामों की आर्थिक संरचना संपूर्ण नहीं हो सकती थी। गांवों की सफाई के विषय में उनका कहना था, "देश में जगह-जगह सुहावने और मनभावने छोटे-छोटे गांवों के बदले हमें घूरे जैसे गांव देखने को मिलते हैं। हमारा फर्ज हो जाता है कि गांवों को सब तरह से सफाई के नमूने बनावें।"

जिस स्वराज्य को वह अपने देश में लाना चाहते थे, उसे उन्होंने 'ग्राम स्वराज्य' की संज्ञा दी थी। अपनी इस अपेक्षा का खुलासा करते हुए उन्होंने कहा था, "ग्राम स्वराज्य की मेरी कल्पना यह है कि वह एक ऐसा पूर्ण प्रजातंत्र होगा, जो अपनी अहम जरूरतों के लिए अपने पड़ोसी पर भी निर्भर नहीं करेगा और फिर भी बहुतेरी दूसरी जरूरतों के लिए जिनमें दूसरों का सहयोग अनिवार्य होगा, वह परस्पर सहयोग से काम लेगा। इस तरह हरेक गांव का पहला काम यह होगा कि वह अपनी जरूरत का अनाज और कपड़े के लिए कपास खुद पैदा कर ले। उसके पास इतनी सुरक्षित जमीन होनी चाहिए जिसमें ढोर चर सकें और गांव के बड़ों तथा बच्चों के लिए मन बहलाव के साधन और खेलकूद के मैदान वगैरा का बंदोबस्त हो सके।"

अपने चित्र को परिपूर्ण करने के लिए आगे होंने कहा, "हरेक गांव में गांव की अपनी नाटकशाला, पाठशाला और सभा-भवन गा। पानी के लिए उसका अपना इंतजाम गा, वाटर वर्क्स होंगे, जिससे गांव के सभी गों को शुद्ध पानी मिला करेगा। बुनियादी लीम के आखिरी दर्जे तक शिक्षा सबके ए अनिवार्य होगी। जहां तक हो सकेगा, व के सारे काम सहयोग के आधार पर किए एंगे। जात-पांत और अस्पृश्यता जैसे भेद ज हमारे समाज में पाए जाते हैं, वैसे इस म-समाज में बिल्कुल नहीं रहेंगे।"

ग्राम सुरक्षित रहें, उनका सारा कार्य वारू रूप से चलता रहे, यह बात भी गांधीजी ध्यान में थी। वह कहते हैं, "सत्याग्रह और सहयोग के शस्त्र के साथ अहिंसा की सत्ता मीण समाज का बल होगी। गांव की रक्षा लिए ग्राम-सैनिकों का एक ऐसा दल होगा, से लाजमी तौर पर बारी-बारी से गांव के की-पहरे का काम करना होगा। इसके ए गांव में ऐसे लोगों का रजिस्टर रखा एगा। गांव का शासन चलाने के लिए गांव पांच आदमियों की पंचायत चुनी जाएगी। के लिए नियमानुसार एक खास निर्धारित ग्यता वाले गांव के बालिग स्त्री-पुरुषों को धिकार होगा कि वे अपने पंच चुन लें। इन ायतों को सब प्रकार की आवश्यक सत्ता र अधिकार रहेंगे। चूंकि इस ग्राम-स्वराज्य में ज के प्रचलित अर्थों में सजा या दण्ड का कोई वाज नहीं रहेगा, इसलिए यह पंचायत अपने क साल के कार्यकाल में स्वयं ही धारा-सभा, ायपालिका सभा और कार्य पालिका सभा का रा काम संयुक्त रूप से करेगी।"

अपने ग्राम स्वराज्य में वह शासन की वस्था ऊपर से नहीं, नीचे से करना चाहते । इसके लिए वह ग्राम इकाई को पूरी तरह से जबूत बनाना चाहते थे। ग्रामवासियों को र पेट पौष्टिक खाना मिले, उनके मकान स्वच्छ ं, उनकी झोंपड़ियों में पर्याप्त प्रकाश और वा की व्यवस्था रहे, झोंपड़ियों के निर्माण उस सामान का प्रयोग किया जाए, जो गांव आस-पास पांच मील के घेरे में मिल सके, व की गलियों में गंदगी के ढेर न हों, वहां पर सी प्राथमिक तथा माध्यमिक शालाएं हों, नमें मुख्यतः औद्योगिक शिक्षा दी जाए, गड़ों के निबटाने के लिए लोग शहरों की दालतों में न दौड़ें, ग्राम पंचायतें उनका सला कर दें और खाने के लिए अनाज और सब्जियों की और पहनने के लिए ग्राम-इकाई अपनी व्यवस्था आप करे।

ग्राम समाज के संबंध में गांधीजी ने अपना चित्र बड़े सुन्दर तथा प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है। उनका कथन है "ग्राम-समाज अनगिनत गांवों का बना होगा। उसका फैलाव एक के ऊपर एक के ढंग पर नहीं, बल्कि शहरों की तरह एक के बाद एक की शक्ल में होगा। जिन्दगी मीनार की शक्ल में नहीं होगी, जहां ऊपर की तंग चोटी को नीचे के चौड़े पाये पर खड़ा होना पड़ता है। वहां तो समुद्र की लहरों की तरह जिन्दगी एक के बाद एक घेरे की शक्ल में होगी और व्यक्ति उसका मध्य-बिन्दु होगा। यह व्यक्ति हमेशा अपने गांव के लिए मर मिटने को तैयार रहेगा। सबसे बाहर का घेरा या दायरा अपनी ताकत का उपयोग भीतर वालों को कुचलने में नहीं करेगा, बल्कि उन सबको ताकत देगा और उनसे ताकत पाएगा। हम सब एक ही आलीशान पेड़ के पत्ते हैं। इस पेड़ की जड़ हिलाई नहीं जा सकती, क्योंकि वह पाताल तक पहुंची हुई है। जबर्दस्त-से-जबरर्दस्त आंधी भी उसे हिला नहीं सकती।"

गांधीजी के सामने सदा ग्रामीण भारत रहा। अपने साबरमती आश्रम को छोड़कर जब उन्होंने नया आश्रम बनाया तो उसके लिए वर्धा के निकट 'सेगांव' को चुना, जिसे बाद में 'सेवाग्राम' नाम दिया। उन्होंने राष्ट्रीय कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन ग्राम में करने का आग्रह किया। वह चाहते थे कि नेता लोग गांवों में जाएं और वहां की दुर-व्यवस्था को अपनी आंखों से देखें। उन्होंने युवकों और युवतियों को आह्वान किया कि वे गांव में जाएं और गांव-वासियों की भांति रहकर उनकी सेवा करें। उन्होंने स्पष्ट कहा, "शहरों से जो कार्यकर्त्ता आवें, उन्हें ग्राम मानस का विकास करना है और ग्राम-वासियों की तरह रहने की कला सीखनी है।"

गांव के किसानों को प्रायः कूप मण्डूक तथा अज्ञानी माना जाता है। गांधी जी की धारणा इसके विपरीत थी। "इन भारतीय किसानों से ज्योंही तुम बात-चीत करोगे और वे तुमसे बोलने लगेंगे, त्योंही तुम देखोगे कि उनके होठों से ज्ञान का निर्झर बहता है। तुम देखोगे कि उनके अनगढ़ बाहरी रूप के पीछे आध्यात्मिक अनुभव और ज्ञान का गहरा सरोवर भरा पड़ा है। मैं इसी चीज को संस्कृति कहता हूं।"

गांधीजी की यह धारणा कितनी यथार्थ थी, इसका एक दृष्टान्त मुझे बार-बार याद आता है। हम लोगों की एक टोली बद्रीनाथ की यात्रा पर जा रही थी। पहाड़ी मार्गों पर पैदल चलने के अभ्यस्त न होने के कारण टोली के स्त्री-पुरुष सब थक कर चूर हो गए थे। एक दिन एक जगह जब सब थोड़ा विश्राम करने के लिए रुके तो सभी अपना-अपना दुखड़ा रोने लगे। किसी ने अपने पैर के और तलवे के छाले दिखाए, किसी ने सिर-दर्द की शिकायत की, महिलाओं ने एक स्वर से कमर की पीड़ा की बात कही। सब अपनी-अपनी परेशानी बता चुके तो मैंने अपने पास बैठी एक ग्रामीण बहन से पूछा, "कहो बहन, तुम्हारा क्या हाल है।" मेरे इस प्रश्न का उस निरक्षर बहन ने जो उत्तर दिया उस पर शहर का सारा ज्ञान निछावर हो गया। बड़े सहज स्वर में उसने कहा, "भैया, तीर्थ-यात्रा में दुःख सहा जाता है, कहा नहीं जाता।" हमारी सारी टोली अवाक उसके मुंह को देखती रह गई।

जीवन की पाठशाला में शिक्षित ग्राम-वासियों का ज्ञान, उनकी अनुभूतियां कितनी गहरी होती हैं, इसका अनुमान वही लगा सकता है, जिसे उनके बीच रहने का अवसर मिला हो। उसकी कुछ-कुछ झांकी लोक साहित्य में झलक जाती है। ग्रामवासियों के शब्दों में आडम्बर नहीं होता, अपने ढंग की निराली सहजता होती है। उसी को लक्ष्य करके गांधीजी ने कहा था, "भारतीय किसान में फुहड़पन के बाहरी आवरण के पीछे युगों पुरानी संस्कृति छिपी पड़ी है। इस बाहरी आवरण को अलग कर दें, उसकी दीर्घ-कालीन गरीबी और निरक्षरता को हटा दें तो हमें सुसंस्कृत, सभ्य और आजाद नागरिक का एक सुन्दर-से-सुन्दर नमूना मिल जाएगा।"

ग्रामीण भारत के प्रति अपनी इस गहन आस्था के कारण ही गांधीजी ने यह आशा व्यक्त की थी कि उनके स्वतन्त्र भारत का राष्ट्रपति एक किसान होगा। □

यशपाल जैन,
सस्ता साहित्य मण्डल,
एन०-77, कनाट सर्कस
नई दिल्ली 110011

ग्रामीण विकास की प्रगति का लेखा-जोखा

जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी

प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने 14 जनवरी, 1982 को राष्ट्र के नाम अपने सन्देश में जो नया बीस-सूत्री कार्यक्रम घोषित किया है, उसमें कम से कम 10 कार्यक्रम ऐसे हैं जिनका सीधा सम्बन्ध ग्रामीण विकास से है। यह बात दूसरी है कि उस विकास के फलस्वरूप वे क्षेत्र भी लाभान्वित होंगे, जो ग्रामीण नहीं हैं। भारत मूलतः गांवों का देश है। इसलिए यह स्वाभाविक ही है कि यहां पर विकास की दृष्टि से जो भी कार्यक्रम हाथ में लिए जाएं, उनका उद्देश्य यदि ग्रामीणों की उन्नति करना नहीं, है, तो इस देश की उन्नति नहीं हो सकती। नए 20-सूत्री कार्यक्रम में पहला कार्यक्रम यह है कि सिंचाई-क्षमता में और वृद्धि की जाएगी, सूखी जमीन पर खेती से सम्बन्धित तकनीकी जानकारी तथा उपकरण आदि तैयार किए जाएंगे और उन्हें किसानों तक पहुंचाया जाएगा। दूसरा सूत्र है : दालों और तिलहन का उत्पादन बढ़ाने के लिए विशेष उपाय किए जाएंगे। तीसरे सूत्र में कहा गया है : सम्बन्धित ग्रामीण विकास तथा राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रमों को मजबूत बनाया जाएगा, और अधिक लोगों को उनसे लाभान्वित किया जाएगा। चौथे सूत्र में कहा गया है : कृषि-भूमि की हदबन्दी की जाएगी, फालतू भूमि का बंटवारा किया जाएगा और तमाम प्रशासनिक और कानूनी अड़चनें दूर करके भूमि सम्बन्धी रिकार्ड दुरुस्त किए जाएंगे। पांचवें सूत्र में बताया गया है कि खेतिहर मजदूरों को न्यूनतम मजदूरी दिलाने की कारगर व्यवस्था की जाएगी और इसकी समीक्षा की जाएगी। छठा सूत्र बंधुआ मजदूरों के पुनर्वास से सम्बन्धित है। आठवें सूत्र में कहा गया है कि पीने के पानी की कमी वाले सभी गांवों में पानी उपलब्ध कराया जाएगा और 9वें सूत्र में कहा गया है कि गांवों में जिन परिवारों के मकान नहीं हैं, उन्हें मकानों के लिए जमीन दी जाएगी और मकान बनाने के लिए वित्तीय सहायता के कार्यक्रमों का विस्तार किया जाएगा। 11वें सूत्र में कहा गया है कि बिजली का उत्पादन बढ़ाया जाएगा, बिजली संस्थानों के काम को बेहतर बनाया जाएगा और सभी गांवों में बिजली पहुंचाई जाएगी। बारहवां सूत्र कहता है कि पेड़ लगाने के कार्यक्रमों, सामाजिक और कृषि-वृक्षारोपण कार्यक्रमों तथा गोबर-गैस व ऊर्जा के अन्य साधनों के विकास के कार्यक्रमों पर मुस्तैदी से अमल किया जाएगा।

इनके अतिरिक्त जो कार्यक्रम हैं, वे भी शहरी जनसंख्या के साथ-साथ गांवों में बसी जनसंख्या को भी प्रभावित करते हैं और इस दृष्टि से उनका भी अधिकांश लाभ ग्रामीण जनता को होगा और वे ग्रामीण विकास में सहायक होंगी। उदाहरण के लिए सातवें सूत्र में कहा गया है : अनुसूचित जातियों और जनजातियों की भलाई के कार्यक्रम और तेज किए जाएंगे। यहां पर यह कहना अप्रासंगिक नहीं होगा कि इन दोनों वर्गों की अधिकांश जनसंख्या गांवों में रहती है। इसी तरह 14वें सूत्र में कहा गया है : सामान्य प्राथमिक स्वास्थ्य सुविधाओं का काफी विस्तार किया जाएगा और कुष्ठ रोग, क्षय रोग तथा अंधेपन की रोकथाम की जाएगी। इस सूत्र के कार्यान्वित होने पर गांवों की स्वास्थ्य सेवाओं में निस्सन्देह प्रगति होगी। 15वें सूत्र में कहा गया है : महिलाओं और बच्चों के कल्याण कार्यक्रमों तथा गर्भवती महिलाओं, माताओं, बच्चों खासकर आदिवासी व पिछड़े इलाकों में रहने वालों के लिए पौष्टिक आहार कार्यक्रम तेजी से लागू किए जाएंगे। इन कार्यक्रमों की सबसे अधिक आवश्यकता गांवों में है और वहीं इनके कार्यान्वियन का परिणाम भी स्पष्ट होगा। 16वें सूत्र में कहा गया है कि 6–14 वर्ष के बच्चों, विशेषकर बालिकाओं के लिए, अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा का विस्तार किया जाएगा और वयस्कों में अशिक्षा दूर करने के काम में स्वयंसेवी संस्थाओं और छात्रों से सहयोग लिया जाएगा। 17वें सूत्र में कहा गया है कि उचित दर की दुकानों की संख्या बढ़ाकर दूरदराज के इलाकों में चलती-फिरती दुकानों की व्यवस्था करके कारखानों में काम करने वाले मजदूरों को उपयोग्य सामग्री व छात्रों को पाठ्य-पुस्तकें और कापियां प्राथमिकता-आधार पर उपलब्ध कराकर सार्वजनिक वितरण प्रणाली का विस्तार किया जाएगा तथा उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा के लिए अभियान चलाया जाएगा।

पाठक देखेंगे कि यद्यपि ये सारे ऐसे कार्यक्रम हैं जो गांवों और शहरों में समान रूप

से लागू होंगे, परन्तु उनका अधिकांश लाभ या तो ग्रामीण जनता को मिलेगा, क्योंकि वहां पर ही इनकी अधिक आवश्यकता है, या शहरी क्षेत्रों के उन दुर्बल वर्ग के व्यक्तियों को मिलेगा जो अपनी बेरोजगारी दूर करने के लिए गांवों से शहरों में आते हैं और वहां पर कठिनाइयां अनुभव करते हैं। यदि उनकी कठिनाइयां दूर होंगी तो उनकी समृद्धि का फल उनके गांवों को भी मिलेगा क्योंकि ये वे लोग हैं जो शहरों में रहते हुए भी गांवों से अपना नाता नहीं तोड़ते।

बीस-सूत्री कार्यक्रमों में एक ऐसा ही कार्यक्रम सूत्र 10 है, जिसमें तंग बस्तियों के सुधार और कमजोर वर्गों के लिए मकान बनाने के कार्यक्रम का जिक्र है। तीन कार्यक्रम अवश्य ऐसे हैं, 18वां, 19वां और बीसवां, जिनका सम्बन्ध औद्योगिकीकरण, काले धन पर रोक और सार्वजनिक संस्थानों की कार्यकुशलता बढ़ाने का जिक्र है, परन्तु उसमें यह प्रावधान किया गया है कि हस्त-शिल्प, हथकरघा और लघु व कुटीर उद्योगों को सभी सुविधाएं दी जाएंगी जिससे वे प्रगति कर सकें।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि प्रधानमंत्री का नया बीस-सूत्री कार्यक्रम मुख्यतया ग्रामीण विकास कार्यक्रम है।

पर इससे यह ध्वनि न समझनी चाहिए कि भारतवर्ष में किसानों के लिए जो कुछ हो रहा है, उसका प्रारम्भ इस बीस-सूत्री कार्यक्रम से हुआ है। इसमें तो केवल प्राथमिकताएं निर्धारित की गई हैं और जिन कामों को प्रधानमंत्री सबसे आवश्यक समझती हैं, उनका संकेत दिया गया है। जहां तक ग्रामीण विकास कार्यक्रम का सम्बन्ध है, उसका श्रीगणेश भारत में पंचवर्षीय योजनाओं के प्रचलन से ही शुरू हुआ और ग्रामीण सामुदायिक विकास योजना, योजना-कार्य का सबसे प्रत्यक्ष नमूना बन गया है। प्रथम पंचवर्षीय योजना में कृषि और सामुदायिक विकास पर 3 अरब 61 करोड़ रु०, सिंचाई पर 1 अरब 68 करोड़ रु०, बहुद्देशीय सिंचाई और बिजली योजनाओं पर 2 अरब 66 करोड़, बिजली पर 1 अरब 27 करोड़ रु०, परिवहन और संचार व्यवस्थाओं पर 4 अरब 97 करोड़ रु०, उद्योगों पर 1 अरब 73 करोड़ रु०, सामाजिक सेवाओं पर 3 अरब 40 करोड़ रु० पुनर्वास पर 85 करोड़ रु० और अन्य कार्यक्रमों पर 52 करोड़ रु० की व्यवस्था की गई थी। इन आंकड़ों से स्पष्ट है कि कृषि, सामुदायिक विकास और सिंचाई-परियोजनाओं पर तो सबसे अधिक ध्यान दिया ही गया था, इनके बाद जो दो अन्य मदें थीं, परिवहन व संचार की और सामाजिक सेवा की, उनका भी काफी लाभ भारत के ग्रामीण क्षेत्रों के लिए प्राप्त हुआ।

इसी योजना में यह प्रावधान भी किया गया कि पूरे गांव के विकास के लिए ग्राम-पंचायतों का संगठन किया जाए और उन्हें मजबूत बनाया जाए। योजना में इस बात पर भी जोर दिया गया कि सहकारी आंदोलन का विकास हो, भूमिहीन मजदूर और कृषि-मजदूरों की स्थिति में सुधार लाया जाए और सामुदायिक विकास कार्यक्रम को बढ़ावा दिया जाए। यह कार्यक्रम 1952 से प्रारम्भ हुआ और जब प्रथम पंचवर्षीय समाप्त हुई तो सामुदायिक विकास खण्डों और राष्ट्रीय विस्तार सेवा खण्डों की संख्या 988 हो गई थी। इन खण्डों में 1,57,347 गांव सम्मिलित कर दिए गए थे और इन गांवों की जनसंख्या 8 करोड़ 88 लाख थी। ये कार्यक्रम धीरे-धीरे बढ़ते रहे, इनके नाम भी बदल गए और छठी पंचवर्षीय योजना में कहा गया कि ग्रामीण क्षेत्रों का विकास लगातार चलने वाली योजनाओं का निरन्तर उद्देश्य रहा है। 50वें दशक के प्रारम्भ में सामुदायिक विकास कार्यक्रम आरम्भ हुआ और उसने गांवों में आधारभूत विस्तार और विकासशील सेवाओं का ताना-बाना स्थापित करने में सहायता दी, जिससे ग्रामीण समुदायों में विकास की सम्भावनाओं और उनके तरीकों के बारे में अधिक जागरूकता उत्पन्न हुई। इसके कारण 60वें दशक के मध्य में कृषि के क्षेत्र में बड़े प्रौद्योगिक प्रयासों को जल्दी स्वीकार करने में मदद मिली। इसके साथ ही मध्यस्थ जमींदारों को समाप्त करने और काश्तकारी प्रणाली में सुधार करने से प्रत्येक पंचवर्षीय योजनाओं में जो पूंजी-निवेश किया गया, उसके कारण आवश्यक भौतिक तथा संस्थागत आधारभूत ढांचे में परिवर्तन हुए जिससे बहुत से ग्रामीण क्षेत्रों में सामाजिक और आर्थिक विकास हुआ। बाद में यह स्वीकार करते हुए कि विभिन्न विकास कार्यक्रमों का लाभ, अधिकांशतः उन लोगों को प्राप्त होता है जिनके पास अपेक्षाकृत अधिक भूमि है, तो ऐसे कार्यक्रम हाथ में लिए गए, जो विशेष तौर पर भूमिहीन और कृषि मजदूरों तथा छोटे और सीमान्त किसानों के विकास के लिए बनाए गए थे।

योजना में आगे कहा गया है कि सन् 1980–85 की पंचवर्षीय योजना का मुख्य कार्य ग्रामीण क्षेत्रों में सामाजिक और आर्थिक विकास के आधारभूत ढांचों को मजबूत किया जाए जिससे ग्रामीण गरीबी दूर हो और क्षेत्रीय असमानताएं भी कम हों।

यद्यपि पिछले तीस वर्षों में भारत की आर्थिक स्थिति में उसके औद्योगिक विकास में और कृषि के विकास में बड़े-भारी परिवर्तन हुए हैं, परन्तु पिछले तीस वर्षों में जहां तक ग्रामीण जनसंख्या का सम्बन्ध है, उसमें कोई विशेष फेरबदल नहीं हुआ है। सन् 1951 में भारत को 82.7 प्रतिशत जनसंख्या गांवों में रहती थी, सन् 1981 में भी यह पाया गया कि 80 प्रतिशत जनसंख्या अब भी गांवों में रहती है। यह तब है कि जब कि हमारे महानगरों की जनसंख्या 5 प्रतिशत से बढ़कर 6.08 प्रतिशत हो गई। साधारणतया कृषि के विकास के साथ ही साथ गांवों का विकास हो जाना चाहिए। जब देश में हरित क्रान्ति आई और खाद्यान्नों का उत्पादन दुगुना हो गया तथा उनके मूल्यों में भी वृद्धि हुई, तो यह सोचना स्वाभाविक था कि गांवों में बहुत-सी तरक्की अपने आप हो जाएगी। कुछ हुई भी है, जहां पहले कच्चे मकान थे, वहां बहुत-सी जगहों पर पक्के मकान हो गए, जहां दूरदराज पर कुंए थे, वहां पास में ही पक्के कुंए तैयार हो गए या अन्य प्रकार से जलप्रदाय की व्यवस्था हुई। नलकूपों, वाटरपम्पों और लिफ्ट सिंचाई योजनाओं से स्थान-स्थान पर सिंचाई का पानी उपलब्ध होने लगा। गांवों में ट्रैक्टर और उनके ट्रेलर न केवल बैलों का, बैलगाड़ियों का स्थान भी लेने लगे। गांवों में साइकिलों, ट्रांजिस्टर-रेडियो, तथा जीवन-यापन सम्बन्धी सुविधाओं में वृद्धि हुई।

पर जैसा छठी पंचवर्षीय योजना में कहा गया है, ये लाभ प्रायः उन लोगों को अधिक

प्राप्त हुए जिनके पास भूमि के साधन अधिक थे । ये भूमि साधन क्या अन्तर डालते हैं, इस पर दृष्टिपात करने की जरूरत है। हमारे देश में 4 करोड़ 45 लाख जोतें ऐसी हैं जिनका आकार एक हेक्टयर से भी कम है कहने को तो ये इतनी जोतें हैं, पर इनके अन्तर्गत जो भूमि है, उसका क्षेत्रफल 1 करोड़ 75 लाख हेक्टेयर होता है, जो भारत की खेती-योग्य भूमि का 10.9 प्रतिशत होता है । इनके अतिरिक्त, 1 करोड़ 47 लाख जोतें ऐसी हैं जिनका आकार दो हेक्टेयर के बीच का है । ये जोतें भी देश की कुल खेती योग्य भूमि के क्षेत्रफल की 12.8 प्रतिशत है। इस देश में जितनी खेती योग्य भूमि है, उसका 56.5 प्रतिशत ऐसी जोतों में है, जिनका क्षेत्रफल 4 हेक्टेयर से अधिक है । वैसे तो संसार के उन्नत राष्ट्रों की दृष्टि से 4 हेक्टेयर की जो बड़ी जोत नहीं मानी जाती, चाहे अमेरिका हो या रूस, लेकिन भारत में तो यह बड़ी है और इसके साथ ही साथ यह भी है कि यह बहुत सीमित हाथों में है । 4 से 10 हेक्टेयर तक की जोतों की संख्या 82 लाख है और यह समझना चाहिए कि वह 82 लाख परिवारों के हाथ में है । 10 हेक्टेयर से अधिक की जोतें केवल 24 लाख हैं और यह मान लेना ठीक होगा कि इन पर स्वामित्व 24 लाख परिवारों का है । परिणाम यह निकलता है कि चार हेक्टेयर से बड़ी जोतों के स्वामी 1 करोड़ 6 लाख हैं, जबकि 68 करोड़ से अधिक जनसंख्या का 80 प्रतिशत गांवों में रहता है । इसका सीधा-सादा अर्थ यह हुआ कि कृषि के विकास के जो लाभ होते हैं, वे थोड़े हाथों में केन्द्रित होते हैं और ग्रामीण जनता को अधिक कृषि के क्षेत्र में हुई सम्पन्नता के सारे लाभ प्राप्त नहीं हो सके । वैसे भी, भारत में खेती योग्य भूमि का 70 प्रतिशत भाग ऐसा है, जहां पर सिंचाई की व्यवस्था नहीं है और किसान को मौसम के भरोसे रहना पड़ता है । यदि सूखा पड़ जाए तो सभी ग्रामीणों की हालत खराब हो जाती है और उनकी तो और भी जिनका अपना निजी अन्न भंडार नहीं है । वैसे भी गांवों में भूमिहीन ग्रामीण रहते हैं, उनको साल में 100 दिन से ज्यादा रोजगार नहीं मिलता और उसी रोजगार की आमदनी से उन्हें पूरा वर्ष काटना पड़ता है । इसका तात्पर्य यह हुआ कि ग्रामीणों के जीवन के विकास के लिए वर्तमान अवस्था में कृषि का विकास मात्र एकमात्र साधन नहीं है और उनको रोजगार देने के लिए वैकल्पिक व्यवस्थाएं करना जरूरी हो जाता है । भारत में 5,75,721 गांव हैं और केवल 2,641 कस्बे हैं या नगर हैं । इनमें से 3,18,611 गांव ऐसे हैं जिनकी जनसंख्या 500 से कम है और 6,333 गांव ऐसे हैं जिनकी जनसंख्या 5000 से अधिक है । इस प्रकार यह स्पष्ट है कि भारत के अधिकांश गांव ऐसे हैं जिनकी जनसंख्या बहुत अधिक नहीं है, परन्तु गांवों की संख्या इतनी अधिक है कि उन सब तक पहुंचना, उनके सुधार की योजनाएं बनाना और उनकी समस्याओं को हल करना आसान नहीं है । अकेले उत्तर प्रदेश में 1 लाख 12 हजार 624 गांव हैं और मध्य प्रदेश में 76,914 गांव हैं । मध्य प्रदेश का क्षेत्रफल उत्तर प्रदेश से कहीं अधिक बड़ा है, इसका स्पष्ट अर्थ यह होता है कि वहां पर गांवों के बीच की दूरी काफी है । राजस्थान जैसे राज्य में जिसका क्षेत्रफल 3,45,214 वर्ग किलोमीटर है और जिसकी जनसंख्या 3 करोड़ 41 लाख है । ऐसे क्षेत्र हैं जैसे बाड़मेर या जैसलमेर जिले, जहां मीलों किसी आबादी का नाम दिखाई नहीं देता, लेकिन उन दूरदराज फैले हुए गांवों को भी एक सम्मिलित योजना के अन्तर्गत विकासकार्य में लगाना पड़ता है ।

विकास का सूत्रपात

जैसा कि हम बता चुके हैं, गांवों में सामुदायिक विकास योजना का प्रारम्भ योजना-कार्य से ही शुरू हुआ । सन् 1977–78 में देश के कई भागों में सूखा पड़ा था, और देश के खाद्य भंडार में अन्न उपलब्ध था । उस समय "काम के बदले अन्न" परियोजना चालू की गयी । भूमिहीन किसानों तथा अन्य बेरोजगार या छोटी जोत वाले किसानों का खास तौर पर ऐसे कामों पर लगाया जाता था और इन कामों के द्वारा ग्रामीण सड़कों, पुलियों आदि का निर्माण किया गया । सन् 1980 में इस परियोजना को सूखा राहत योजना से बदल कर इसे ग्रामीण रोजगार योजना के रूप में परिवर्तित कर दिया गया । इस समय सारे देश में समन्वित ग्रामीण विकास योजना लागू है और जो 5,011 विकास-खण्ड हैं, उन सब में यह कार्यान्वित की गई । इस योजना का उद्देश्य यह है कि प्रत्येक खण्ड में प्रतिवर्ष 600 परिवारों की आर्थिक स्थिति सुधार कर उन्हें गरीबी की रेखा से ऊपर ले जाया जाए । यह उद्देश्य रखा गया है कि 400 परिवारों की उन्नति कृषि और तत्सम्बन्धी गतिविधियों द्वारा हो, 100 परिवारों की ग्रामीण उद्योगों द्वारा और 100 परिवारों की ग्रामीण सेवाओं तथा व्यापार द्वारा । इस प्रकार छठी योजना की अवधि में प्रत्येक विकास-खण्ड में 3,000 परिवारों को सहायता मिलेगी । औसतन एक वर्ष में सारे देश में 30 लाख परिवारों और कुल योजनाकाल में 1 करोड़ 50 लाख परिवारों को इससे सहायता मिलेगी । इसके लिए छठी योजना में 15 अरब रु० का प्रावधान किया गया है । इसके अनुसार प्रत्येक विकास खण्ड को 45 लाख रु० का प्रावधान किया गया है । इसके अतिरिक्त 30 अरब रु० के ऋण बैंकों तथा सहकारी समितियों द्वारा दिए जाएंगे, यानी देश में जो सबसे गरीब परिवार हैं, उनको उन्नत करने के लिए छठी पंचवर्षीय योजना में 45 अरब रु० की पूंजी लगाई जाएगी । किसानों को या उद्योग में रुचि रखने वालों को अपने कामकाज के सिलसिले में जो पूंजीनिवेश करना होगा, उसका चौथाई से लेकर एक तिहाई तक का भार सरकारी सहायता के रूप में होगा । आदिवासी परिवारों को प्रत्येक परियोजना के खर्च का आधा या 5000 रु० तक अनुदान मिलेगा । यह भी प्रावधान किया गया है कि अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लोगों को इस योजना का बड़ा लाभ हो और इन योजनाओं द्वारा जो धन खर्च किया जाए, उसका 30 प्रतिशत अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लोगों को प्राप्त होगा ।

ट्राइसेम

एक दूसरी योजना है जिसे ट्राइसेम कहते हैं और जिसका उद्देश्य ग्रामीण युवकों को अपने रोजगार खुद चलाने के लिए प्रशिक्षण देना है । इस योजना के अनुसार सारे देश में 18 वर्ष से 35 वर्ष की उम्र के युवकों को औद्योगिक या टेक्नीकल प्रशिक्षण देना है । यह भी प्रावधान है कि इस योजना

का लाभ लेने वालों में कम से कम एक-तिहाई स्त्रियां हों। छठी योजना में इस कार्य के लिए 5 करोड़ रु० का प्रावधान किया गया है। सन् 1981–82 में इस योजना के अन्तर्गत 78,743 युवक प्रशिक्षित हो चुके हैं। और 49,816 का प्रशिक्षण जारी था। प्रशिक्षित युवकों में से 25,882 अपना धन्धा खोलकर बैठ चुके थे।

रोजगार कार्यक्रम

राष्ट्रीय रोजगार कार्यक्रम इससे भिन्न है। यह सारे देश में फला हुआ है। इसके उद्देश्य जहां एक तरफ किसानों को रोजगार देना है, वहां पर देहातों में आधार-भूत सेवाओं की वृद्धि भी करना है। वास्तव में यह "काम के बदले अनाज" कार्यक्रम का परिवर्द्धित रूप है। इसमें जो काम हाथ में लिए जाते हैं, वे हैं: वृक्षारोपण और सामाजिक वन-विकास, भूमि-विकास, भूमि को समतल करना और भरक्षण, छोटी सिंचाई योजनाएं, पानी के लिए नालियां, सामुदायिक जलप्रदाय योजनाएं, तालाबों की खुदाई और गहरा करना, ग्रामीण सम्पर्क मार्ग बनाना, स्कूल, दवाखाना तथा सामुदायिक केन्द्रों के लिए भवन निर्माण आदि। इस कार्यक्रम में यह प्रावधान किया गया है कि एक गरीब परिवार से कम से कम एक आदमी को वर्ष में 100 दिन काम मिलेगा। यह कार्यक्रम उन दिनों किए जाते हैं, जब कृषि-कार्य नहीं होते। इस कार्य-क्रम में प्रत्येक व्यक्ति को प्रतिदिन एक किलो अन्न तथा नगद मजदूरी दी जाती है। राज्यों के लिए जो धन आवंटित किया जाता है, उसमें 25 प्रतिशत तो इस आधार पर निर्धारित किया जाता है कि राज्य में कृषि-मजदूरों और सीमान्त किसानों की संख्या कितनी है और 25 प्रतिशत राज्य की गरीबी के आधार पर। इन साधनों का 10 प्रतिशत ऐसे कार्यों के लिए लगाया जाता है, जो अनुसूचित जातियों और जन-जातियों के लाभ के लिए हैं।

ग्रामीण विकास या रोजगार के लिए खादी और ग्रामोद्योगों की भी महत्वपूर्ण भूमिक है। पंचवर्षीय योजना में यह प्राव-धान किया गया है कि खादी तथा ग्रामो-द्योग क्षेत्र से 12 अरब रु० का माल तैयार हुआ और उससे 50 लाख से अधिक कारी-गरों को रोजगार मिलेगा। इसके साथ ही खादी और ग्रामोद्योग मण्डल ग्रामोद्योगों का विकास करेंगे, जो प्रतिवर्ष 50 परि-वारों के लिए उद्योग की व्यवस्था करेंगे और इनमें भी अनुसूचित जातियों, जनजातियों और महिलाओं को प्राथमिकता दी जाएगी। सन् 1980–81 में इस कार्यक्रम के अन्तर्गत 30 लाख 16 हजार व्यक्तियों को रोजगार मिलेगा।

यह कार्यक्रम भी बनाया गया है कि संकर नस्ल के पशुओं, मुर्गीपालन, सूअरपालन आदि के लिए ऋण तथा सहायता दी जाएगी। छोटे और सीमान्त किसानों को संकर नस्ल के बछड़ों के चारे के लिए 50 प्रतिशत और कृषि-मजदूरों को $66\frac{2}{3}$ प्रतिशत सहायता दी जाती है। मुर्गीपालन, भेड़पालन आदि के लिए भी चौथाई से लेकर एक-तिहाई तक की सहायता दी जाती है। पिछले वर्ष लगभग एक लाख व्यक्तियों ने इस योजना का लाभ उठाया।

ग्रामीण विकास के दो अन्य कार्यक्रम हैं:— ग्राम-सड़क कार्यक्रम और ग्रामीण गोदाम कार्यक्रम। यह योजना बनाई गई है कि जितने गांव ऐसे हैं जिनकी जनसंख्या 1500 से अधिक है और हजार से डेढ़ हजार की जनसंख्या वाले गांवों के 50 प्रतिशत को 1990 तक सड़कों से जोड़ दिया जाए और इस कार्य के लिए छठी योजना में 11 अरब 65 करोड़ रु० का प्रावधान किया गया है। सड़क सम्पर्क स्थापित होने पर ग्रामीण अपनी फसल को आसानी से दूर-दराज तक भेज सकेंगे और इन सड़कों को बनाने में करोड़ों ग्रामीणों को रोजगार भी मिलेगा। दूसरी योजना ग्रामीण गोदाम कार्यक्रम की है। 1979–80 में इसको चालू किया गया। इसका उद्देश्य यह है कि हरेक गांव में ऐसे भंडार कायम किए जाएं, जहां पर किसान, विशेषतया छोटे किसान, अपनी फसल को सुरक्षित रख सकें और कीड़े-मकोड़ों आदि से उन्हें हानि न हो। उन्हें भी यह असुविधा रहेगी कि वे माल तभी बेचें, जब उपयोगी हो। जिस समय वे अन्न या अन्य फसलें भंडारण के लिए रखेंगे तो उन्हें एक रकम अग्रिम दी जाएगी, जिससे कि वे अपना काम चला सकें। इस प्रकार इन योजनाओं से ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था को दोहरा लाभ होगा। पहले तो जो गोदाम बनेंगे, उनमें स्थानीय मज-दूरों को काम मिलेगा, दूसरे माल सुरक्षित रहेगा और बरसात से पहले फसल बेचने की जल्दी भी किसान को नहीं रहेगी।

इस प्रकार ग्रामीण विकास के कार्यक्रम में दोनों तत्वों का समन्वय किया गया है। पहला प्रयास यह है कि ग्रामीण जनता की तात्कालिक कठिनाइयों को दूर किया जाए। जिनके पास रोजगार नहीं है, उन्हें काम मिले, जिन्हें प्रशिक्षण की आवश्यकता है, उन्हें प्रशिक्षित किया जाए, जो नया उद्योग खड़ा करना चाहते हैं उन्हें इसके लिए साधन और सहायता प्राप्त हों। इसके साथ ही गांवों में अच्छे मकान बन, सड़कें बनें, पेय-जल की व्यवस्था हो, सिंचाई की सुविधा हो, सामाजिक वन विकास और वृक्षारोपण द्वारा वातावरण सुरक्षित हो और कृषि तथा उद्योग के क्षेत्र में गांव का छोटे-से-छोटा वर्ग भी लाभान्वित हो सके। □

कैनरा बैंक में हिन्दी दिवस

कैनरा बैंक, दिल्ली अंचल कार्यालय ने 14 सितम्बर, 1982 को हिन्दी दिवस के उपलक्ष्य में रंगा-रंग कार्यक्रम का आयोजन किया। इस अवसर पर हिन्दी की प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया। प्रतियोगिता विजेताओं को पुरस्कार दिए गए।

प्रयोगशाला से खेतों तक

रमेश दत्त शर्मा

उत्तर प्रदेश में कानपुर के पास एक छोटा सा गांव है चकरपुरा। इस गांव में अनुसूचित जाति के खेतिहर मजदूरों के 50 परिवार रहते हैं। इनमें से, सबसे गरीब 32 परिवारों को सरकार द्वारा जमीन तो दी गई, पर यह जमीन ऊसर थी। रेह होने के कारण इस भूमि में कुछ भी उगाना मुश्किल था। इस तरह जमीन मिलने के बावजूद इन खेतिहर मजदूरों की जिन्दगी में कोई बदलाव नहीं आया। लेकिन अब इन मजदूरों ने भाग्य को कोसना छोड़ दिया है। आज वे उन्हीं ऊसर जमीनों से सालभर में तीन-तीन फसलें ले रहे हैं। पहले धान, फिर गेहूं और गेहूं की कटाई के बाद मूंग।

केरल में कोचीन के पास अनुसूचित जाति की एक बस्ती में लगभग 122 परिवार रहते हैं। इस बस्ती के पास की दलदली जमीन में गंदगी और मच्छरों के सिवा कुछ भी पैदा नहीं होता था। आज उसी में मछलीपालन खासतौर से झींगा पालन के तालाब हैं, जिनसे हर साल 11 से 12 हजार रुपये की आमदनी हो रही है।

पश्चिम बंगाल में कलकत्ता के पास बैरकपुर से भूमिहीन मजदूरों की महिलाएं घरों में झाड़ू-पौंछा, बर्तन और कपड़े धोकर सालभर में मुश्किल से 500-600 रुपये कमा पाती थीं। आज यही महिलाएं जिस-किसी के घर में नौकरानी बनने के बजाय अपने ही घर में बैठकर खास तरह के करघे पर दिन भर में जूट के दो थैले बुनकर 5-6 रुपये रोज कमा रही हैं।

उत्तर प्रदेश, केरल और पश्चिम बंगाल के ये परिवार उन 50 हजार परिवारों में शामिल हैं, जिन्हें गरीबी की रेखा से ऊपर उठाने का संकल्प भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् ने अपनी स्वर्ण जयंती के अवसर पर पहली जून, 1979 को किया था। तय यह किया गया कि पिछले पचास सालों में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् के वैज्ञानिकों ने अपनी प्रयोगशालाओं में जो भी खोजें की हैं, उन्हें खेतों तक पहुंचाया जाए। इसलिए इस कार्यक्रम को तत्कालीन महानिदेशक डा० एम० एस० स्वामीनाथन् ने नाम दिया—"लैब-टू लैंड" अर्थात् प्रयोगशाला से खेत तक।

इस कार्यक्रम का पहला चरण तीन साल में 1 जून, 1982 को पूरा हुआ। देशभर में बिखरे 3,333 गांवों के छोटे और बहुत छोटे किसान, भूमिहीन मजदूर, अनुसूचित जातियों तथा जन-जातियों के 50,000 परिवारों के लिए जीवन में पहली बार सुख और समृद्धि के द्वार खुले। सबसे बड़ी बात यह थी कि इस कार्यक्रम के लिए अलग से वेतनभोगी कर्मचारी नहीं रखे गए। परिषद् के 32 कृषि अनुसंधान संस्थानों के अतिरिक्त 23 कृषि विश्वविद्यालयों और 31 सम्बद्ध कृषि महाविद्यालयों के लगभग 10,000 वैज्ञानिकों ने अपने नियत कार्य से अतिरिक्त समय निकालकर इस अभूतपूर्व कार्यक्रम को सफल बनाया।

छोटा नागपुर की लाल मिट्टी में पहली बार सोयाबीन और मूंग की फसलें उगाई गईं। गुजरात के आदिवासियों ने पहली बार कसावा या टेपिओका के शकरकंद जैसे मगर फीके कंद पैदा करना सीखा, जिन्हें उबालकर नमक मिलाकर खाइए और बच रहे तो साबूदाने बनाने वाले कारखानों को बेच दीजिए। सौराष्ट्र में धनिया और सरसों की फसलें भी आदिवासियों ने इस कार्यक्रम के पहुंचने से पहले कभी नहीं उगाई थीं। सुधरे तरीकों से खेती, पशुपालन, मुर्गीपालन, मछलीपालन, रेशम के कीड़े पालना, लाख के कीड़े पालना, सुअर पालना और खुंभी उगाना सिखाने के लिए एक लाख से अधिक किसानों, खेतिहर मजदूरों, ग्रामीण महिलाओं और युवकों को प्रशिक्षित किया गया। हर काम वैज्ञानिकों ने खुद करके दिखाया। जो पढ़ सकते थे, उन्हें प्रसार-साहित्य दिया जो निरक्षर थे, उन्हें चित्रों से, स्लाइडों से, फिल्मों से और सबसे ऊपर सीधे उनके घर में, खेत में प्रदर्शन करके नई जानकारी दी गई।

अजमेर के पास मायापुर, नाहरपुर और कैसरपुरा में उदयपुर विश्वविद्यालय के वैज्ञानिक "प्रयोगशाला से खेतों तक" कार्यक्रम शुरु करने से पहले सर्वेक्षण के लिए गए तो जिन छोटे किसानों के 50 परिवार चुने गए, वे अपने बारे में कुछ भी बताने से साफ मुकर गए। जमीन की बाबत इसलिए नहीं बताना चाहते थे कि कहीं ये सरकार उनकी जमीनों पर कब्जा न कर ले। परिवार के बारे में इसलिए चुप्पी साध गए कि कहीं जबरन नसबन्दी न कर दी जाए। बहुत तरह से समझा-बुझाकर ही इन ग्रामीणों के मन से ये बहम निकाले जा सके। ये लोग इस कार्यक्रम से पहले रासायनिक खाद अपनी खड़ी फसल में थोड़ी भुरकते भर थे। वह भी सिर्फ नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटाश का तो कोई नाम ही नहीं लेता था। मिट्टियों की जांच कभी नहीं करवाई गई। गोबर की खाद या कम्पोस्ट तैयार करना भी उन्हें ढंग से नहीं आता था। तीनों गांव के 100 में से 10 किसान ही अपनी फसल पर कीड़े मारने की दवा इस्तेमाल करते थे। सिंचाई के लिए कुओं पर मोटरें तो साझेदारी में लगी पर कुएं से खेत तक पानी पहुंचाने के लिए बड़ा खराब इंतजाम कर रखा था। अनाज को कीड़ों से सुरक्षित रखने के लिए उचित वैज्ञानिक साधन अपनाने की बजाय ये लोग बी० एच० सी० या डी० डी० टी० इस्तेमाल करते थे, जो आदमी के लिए बड़ी जहरीली हैं। जब खरीफ में फसल की बुआई का वैज्ञानिक प्रदर्शन किया गया तो बहुत कम किसान इकट्ठे हुए। पर आखिर में जब वैज्ञानिक प्रदर्शन वाले सभी खेतों

पर फसलें लहलहा उठीं तो फिर सब पूछने लगे कि हमें भी सिखाओ कि कैसे किया। ये तीनों गांव सूखे से प्रभावित थे, फिर भी अच्छी फसल मिली तो सारे किसानों पर कार्यक्रम की धाक जम गई।

लगभग ऐसे ही समाचार उन सभी आठ परिमंडलों से प्राप्त हुए, जिनमें पूरे देश को बांटकर भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद ने "प्रयोगशाला से खेतों तक" कार्यक्रम के द्वारा हर तरह की परिस्थितियों में कृषि प्रौद्योगिकी की प्रभावशीलता को परखा। परिमंडल एक में जम्मू-कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, पंजाब, हरियाणा, चंडीगढ़, और दिल्ली रखे गए। दूसरे में पश्चिम बंगाल, उड़ीसा, अंडमान और निकोबार द्वीपसमूहों को लिया गया। अरुणाचल प्रदेश, नागालैंड मणिपुर, मिजोरम, त्रिपुरा, सिक्किम, मेघालय और असम को तीसरे परिमंडल में शामिल किया गया। चौथे में उत्तर प्रदेश और बिहार रखे गए। पांचवां केवल आंध्र प्रदेश का था। राजस्थान, गुजरात और दादरा तथा नगर हवेली को छठे परिमंडल का सदस्य बनाया गया। सातवें में महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, गोआ, दमन और दीव रखे गए। आखिरी था आठवां परिमंडल, जिसमें कर्नाटक, तमिलनाडु, केरल, पांडिचेरी और लक्षद्वीप शामिल थे।

ऊसर जमीन में तीन फसलें

प्रत्येक परिमंडल में उस क्षेत्र के कृषि विश्वविद्यालय या कृषि अनुसंधान संस्थान के एक वरिष्ठ वैज्ञानिक को उस क्षेत्र का समन्वयकर्ता बनाया गया। उदाहरण के लिए चौथे परिमंडल में दो बड़े राज्य उत्तर प्रदेश और बिहार शामिल थे। उत्तर प्रदेश में कानपुर के चन्द्रशेखर आजाद कृषि तथा प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय में कृषि-विस्तार के निदेशक डा० दौलत सिंह से जब लेखक ने पूछा कि उन्होंने चकरपुर गांव में ऊसर जमीन का सुधार कैसे किया और कैसे उसमें तीन-तीन फसलें उगाकर दिखाईं, तो डा० सिंह ने बताया —"हमने सबसे पहले तो इन गरीब भूमि-हीन मजदूरों को कहा कि वे अपने खेतों को समतल बनाएं। उसके बाद हर खेत की मेंड़बन्दी करा दी। फिर सभी खेतों की मिट्टी को जांच के बाद मिट्टी-सुधारक के रूप में "पाइराइट" की कितनी मात्रा डाली जाए यह तय किया। लेकिन पाइराइट, मिलाने से पहले हर खेत में लगभग 8 दिन तक पानी भरा रहने दिया। मेंड़बन्दी की वजह से पानी इधर-उधर नहीं बहा और खेत में ही खड़ा रहा। इसके बाद पानी की निकासी कर दी गई। अब खेतों की नम मिट्टी में हल्की जुताई कराके निश्चित मात्रा में पाइराइट मिला दिया गया। इसके बाद 8 दिन तक इस खेत को यों ही छोड़ दिया गया और कोई छेड़छाड़ नहीं की गई। इससे क्या होता है कि पाइराइट में मौजूद गंधक लोहे से हटकर मिट्टी में मौजूद पानी में घुल जाता है—आक्सीकरण की क्रिया से। अब खेत में ओट आने पर हल्की जुताई करके धान की पौध लगा दी जाती है। पौध लगाने से पहले इस खेत में लेवा नहीं लगाते, नहीं तो मिट्टी-सुधारक का असर गड़बड़ा जाएगा।"

"क्या इस सुधरे खेत में धान की खेती करने में कुछ विशेष सावधानियां बरतनी होती हैं?" मैंने पूछा। उत्तर में डा० दौलत-सिंह ने बताया—जी हां, एक तो ऊसर खेत में कभी भी धान का बीज बिखेर कर या हल के पीछे नहीं बोना चाहिए। हमेशा रोपाई ही करें। दूसरे, एक जगह कम से कम चार पौध लगाएं, जिनकी उम्र कम से कम 30–35 दिन की हो। कतार से कतार के बीच 15 सें० मी० दूरी रखें और पौध से पौध के बीच 10 सें० मी०। साथ ही नाइट्रोजन, फास्फोरस तथा पोटाश के साथ ही पहली बार फसल लेते समय 40 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से जिंक सल्फेट मिलाना भी जरूरी है।

क्या कोई समस्या आई? मैं पूछता हूं। "समस्याएं तो हर काम में आती हैं।" डा० दौलतसिंह बोले, "यहां भी आईं। हुआ यह कि रोपाई के 20 दिन बाद कुछ किसान भाइयों के खेत की पौध मर गई। वे भागे-भागे हमारे पास आए। हमने पहले से ही इस बारे में सोचकर संकटकालीन नर्सरी लगारखी थी। उसमें से नई पौध देकर उनसे कहा कि जो पौध मर गई है, उनकी जगह इन्हें लगा दो। यह भी ध्यान रखा कि पानी की कमी न होने पाए और खेत की मिट्टी हमेशा गीली रहे।"

मैंने आखिरी सवाल किया "कितनी पैदावार मिली और कितना मुनाफा हुआ?" उत्तर में डा० दौलतसिंह ने बताया कि पाइ-राइट से ऊसर भूमि सुधारने के बाद दूसरे साल धान की खेती से 4,250 प्रति हेक्टेयर आमदनी हुई, यानी खर्चा निकालकर लगभग 1800 रुपये की शुद्ध आय। उसी खेत पर धान की कटाई के बाद गेहूं की खेती से भी अनाज और भूसा दोनों मिलाकर लगभग 1800 रुपये प्रति हेक्टेयर ही मुनाफा हुआ। लेकिन सबसे ज्यादा फायदा हुआ गेहूं की कटाई के बाद तीसरी फसल के रूप में उसी खेत पर मूंग उगाने से। यह समझें कि किसान ने रुपया खर्चा तो मूंग की खेती से उसे डेढ़ रुपये वापस मिल गया।

दूसरा चरण

इन गरीब ग्रामवासियों को सपने में भी आशा नहीं थी कि वे अपनी ऊसर जमीनों पर तीन-तीन फसलें ले सकेंगे। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद ने शुरु में खेती के लिए बीज, खाद, पाइराइट आदि की व्यवस्था के लिए प्रति परिवार 590 रुपये की दर से आर्थिक सहायता का भी प्रबन्ध किया। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के कृषि भवन, नई दिल्ली स्थित मुख्यालय में सहायक महानिदेशक डा० चन्द्रिका प्रसाद के शब्दों में "इस कार्यक्रम ने खासतौर से पिछड़े वर्गों में जो उत्साह जगाया है, उससे प्रभावित होकर अब इस कार्यक्रम के दूसरे चरण की स्वीकृति मिल गई है, जो अगले साल मई, 1985 तक चलेगा। इसमें 75,000 पिछड़े परिवारों को नई कृषि प्रौद्योगिकी सिखाकर आगे बढ़ाने का संकल्प रखा गया है।"

बिहार में पूसा स्थित राजेन्द्र कृषि विश्व-विद्यालय के कृषि प्रसार निदेशक, डा० गोपाल जी द्विवेदी ने "प्रयोगशाला से खेत तक" कार्यक्रम के दूसरे चरण की जानकारी दी कि किस तरह वहां यह कार्यक्रम 2000 किसान परिवारों में चलाया जा रहा है। "ये परिवार बहुत गरीब हैं, पिछड़े वर्ग के हैं, जिनके पास जमीन नहीं है, और अगर है तो बिल्कुल नहीं के बराबर है। हर किसान का अलग-अलग सर्वे किया गया है कि किस तरह की उनकी हैसियत है—खेत हैं, तो किस तरह खेती करते हैं, कितनी उनकी फसल हो रही है और कम उपज ले रहे हैं तो क्यों? कैसे वे जीविका चलाते हैं। फिर उनसे ही राय-विचार करके हर परिवार के लिए योजना बनाई जाती है कि पिछड़ेपन से मुक्त होने के लिए वे

कौन-कौन से तरीके अपनाना चाहेंगे । फिर हर पांच किसान-परिवारों का जिम्मा वैज्ञानिकों की एक टोली के सुपुर्द कर दिया । पहले चरण में पांच परिवारों को एक वैज्ञानिक को सौंपकर देखा था । लेकिन उससे काम चला नहीं, क्योंकि एक वैज्ञानिक तो एक ही चीज का विशेषज्ञ हो सकता है । जो मिट्टी का विशेषज्ञ है वह खाद के बारे में तो सलाह दे सकता है पर फसल की बीमारियों के बारे में पूरा ज्ञान नहीं रखता, जो बीमारियों के बारे में जानता है, उसे कीड़ों की जानकारी के लिए कीट-विशेषज्ञ के पास जाना पड़ता है । इसीलिए इस तरह के सभी प्रकार के विशेषज्ञों को मिलाकर वैज्ञानिकों की टोलियां बनाई गई और हर टोली को पांच किसान परिवार सौंप दिए गए हैं । मान लीजिए कि चुना गया परिवार भूमिहीन है और पशु पालना चाहता है तो हमने देखा कि बकरी पालन उसके लिए काफी सस्ता भी पड़ता है और मुनाफे का भी । बकरियों की नस्ल सुधारने के लिए हम मथुरा के पास मखदूम में स्थित भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के बकरी अनुसंधान केन्द्र से मदद ले रहे हैं जिनके पास गाय हैं, वहां गाय की नस्ल सुधारने के लिए कृत्रिम गर्भाधान का सहारा लेते हैं । जिनके पास आधा एकड़ भी खेत हैं, उन्हें सिखाते हैं कि किस तरह सालभर में कई फसलें लेकर और साथ में पशुपालन और मुर्गीपालन जैसे धन्धे अपनाकर वे अपनी आमदनी बढ़ा सकते हैं । किसानों में आपस में उपज बढ़ाने की प्रतियोगिताएं रखी जाती हैं । और सबसे अधिक पैदावार लेने वालों को इनाम दिए जाते हैं । "प्रयोगशाला से खेत तक कार्यक्रम" के पहले चरण में जिन किसान परिवारों को लिया गया था, उनके विकास की खबर चारों तरफ ऐसी फैली कि इस साल से शुरु किए गए कार्यक्रम के दूसरे चरण में चुने गए किसान परिवार बड़े उत्साह से बढ़-चढ़ कर हिस्सा ले रहे हैं । □

बीस-सूत्री आर्थिक कार्यक्रम नए परिप्रेक्ष्य में

✳ वासुदेव झा

प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी द्वारा घोषित 20 सूत्री कार्यक्रम 1975 में घोषित कार्यक्रम से विशेष भिन्न तो नहीं है, पर इसमें जो कुछ नई बातें जोड़ी गई हैं, उनसे ऐसा अवश्य लगता है कि वह भारतीय अर्थव्यवस्था को निश्चित दिशा की ओर गतिमान रखने के लिए कटिबद्ध है । कुछ क्षेत्रों द्वारा उन पर यह आरोप लगाया जाता रहा है कि उनकी सरकार दिशा हीनता की स्थिति से गुजर रही है । अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष से प्राप्त ऋणों से जुड़ी शर्तों के संदर्भ में यह आरोप भी लगाया गया कि श्रीमती गांधी की सरकार समाजवादी समाज रचना के मूल उद्देश्य से हटती जा रही है और उन शर्तों के अनुपालन के परिणामस्वरूप पश्चिमी पूंजीवादी को चोर दरवाजों से घुस जाने का अवसर मिलेगा । अर्थव्यवस्था पर खालिस बाजार-नियम लागू होगा और वितरणात्मक न्याय की बात हवा में उड़ जाएगी । ये आंशकीय बहुत हद तक निराधार थीं पर राष्ट्र मानस उलझन और भ्रांतियों का शिकार अवश्य हो रहा था । अब नव घोषित 20-सूत्री कार्यक्रम से सम्बन्धित प्रधानमंत्री के वक्तव्य से यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि श्रीमती गांधी की सरकार अपने पूर्व संकल्प पर अडिग है और इस कार्यक्रम का तात्पर्य अर्थव्यवस्था को अधिक गतिशील और लोक कल्याणकारी बनाना ही है । प्रधानमंत्री 20-सूत्री कार्यक्रम को कितना महत्व देती है, इसका अन्दाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि उन्होंने स्वयं अपनी अध्यक्षता में इस कार्यक्रम के क्रियान्वयन पर नजर रखने के लिए एक विशेष समिति गठित की गई है। कार्यक्रम का क्रियान्वयन कितना आगे बढ़ा है और क्रियान्वयन के दौर में क्या-क्या कठिनाइयां नजर आयी हैं, इसकी मध्यावधि समीक्षा की जा रही है और सितम्बर, अक्तूबर, तक पुनरीक्षा समाप्त हो जाने के बाद ही वस्तुस्थिति की सही जानकारी मिल सकेगी।

यहां मुख्य विचारणीय प्रश्न यह है कि 1975 में घोषित 20-सूत्री कार्यक्रम से यह नया कार्यक्रम कितना भिन्न है और यह नया कार्यक्रम लागू करने की आवश्यकता क्यों पड़ी । इस पर विचार करने से पूर्व हमें यह समझ लेना होगा कि भारत में गरीबी कोई हाल की बात नहीं है । इसका एक अपना लम्बा इतिहास है और अभी तक कोई ऐसी जादुई छड़ी हाथ में नहीं लगी है, जिसे घुमाकर इस ऐतिहासिक समस्या को छूमन्तर किया जा सके ।

प्रधानमंत्री स्वयं मानती हैं कि नए कार्यक्रम 1975 में घोषित कार्यक्रम से बुनियादी तौर पर विशेष भिन्न नहीं है । पिछले छः साल के दौरान देश के आर्थिक एवं सामाजिक जीवन में जो बदलाव आया है और मूल कार्यक्रम की जो उपलब्धियां और विफलताएं परिलक्षित हुई है, उनको ध्यान में रखते हुए कुछ संशोधन और परिवर्तन किये गए हैं । 20 सूत्रों में 15 या 16 सूत्र प्रायः वे ही हैं, जो मूल कार्यक्रम में थे । शेष चार सूत्रों में उन बातों पर विशेष बल दिया गया है जिनसे सकल उत्पादन इतना बढ़ाया जा सके कि वितरणात्मक न्याय को सर्वसुलभ कराने में आसानी हो ।

उदाहरणार्थ, दालों और वनस्पति तेलों को ही लें । सर्वविदित है कि गत कई वर्षों से इन वस्तुओं का भारी अभाव अनुभव किया जाता रहा है । अकेले खाद्य तेलों के आयात पर प्रति वर्ष आठ-दस अरब रु० खर्च करना पड़ रहा है । दालों की कमी के कारण आम उपभोक्ता पर दोहरी मार पड़ रही है । इनकी कीमतें अत्यधिक बढ़ जाने से प्रायः सभी दालें निर्धन वर्गों की पहुंच से बाहर हो चली है । निम्न मध्यम वर्गीय परिवारों में भी इनकी खपत कम करनी पड़ी है । हालांकि सचाई यह है कि कुल आबादी का तीन-चौथाई से भी अधिक हिस्सा

प्रोटीन के लिए दालों पर ही निर्भर करता है। प्रकारान्तर से इसे इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि दालों के अभाव और मंहगाई से जन-स्वास्थ्य के लिए खतरा उत्पन्न हो गया है।

दूसरी नई बात है गांवों में पीने का पानी उपलब्ध कराने की। पौने छह लाख गांवों में कोई डेढ़ लाख गांव अब भी ऐसे हैं, जिनमें स्वच्छ पेय जल उपलब्ध नहीं है। तीसरी नई बात यह है कि इस बार व्यापक प्रौढ़ साक्षरता और व्यापक प्राथमिकता शिक्षा का प्रबन्ध युद्ध स्तर पर किया जाएगा। और चौथी बात है औद्योगिक उत्पादन में आने वाली बाधाओं को दूर करने की।

इन चार मुद्दों को उभार कर यहां रखने का उद्देश्य सिर्फ यह देखना है कि इन पर विशेष बल देने की आवश्यकता प्रधानमंत्री क्यों अनुभव करती हैं। सबसे पहले दालों और तिलहन-बीजों को लें। पिछले कुछ वर्षों के दौरान, विशेषकर गत दशक के आरम्भ में आयी हरित क्रांति के बाद से मुख्य जोर गेहूं और चावल तथा गन्ने और कपास पर रहा है। इनका उत्पादन बढ़ाने के लिए विशष अनुसंधान एवं विकास कार्यक्रम चले। पर दालों और तिलहन-बीजों का उत्पादन बढ़ाने पर उतना ध्यान नहीं दिया गया। फलतः इन दोनों का ही व्यापक अभाव है। जहां तक खाद्य तेलों की आपूर्ति का सवाल है, इनका आयात हो सकता है, क्योंकि तिलहन-बीज और खाद्य तेल विदेशों में प्राप्य है। पर दालों के मामले में स्थिति अधिक जटिल है। दालों का विश्व उत्पादन बहुत अधिक नहीं है। वस्तुतः भारत ही दालों का सबसे बड़ा उत्पादक देश है।

भारत में कुछ दालों की नई किस्में विकसित की गई हैं, पर गेहूं, चावल और गन्ने की तरह इनका उत्पादन बढ़ाने का प्रयास अपेक्षित प्रगति नहीं कर सका है। अतः नए 20 सूत्री कार्यक्रम में इसको दी गई प्राथमिकता का महत्व स्वयं सिद्ध है। तथ्य यह है कि जब तक खाद्य पदार्थों का प्राचुर्य नहीं होगा, तब तक औद्योगिक उत्पादन आम आदमी के लिए अर्थहीन रहेगा।

स्वच्छ जल स्वस्थ जीवन के लिए प्राथमिक महत्व की वस्तु है। पर हमारे, राष्ट्रीय विकास अनुसंधान का एक दर्दनाक पक्ष यह है कि यह बुनियादी वस्तु भी सबको सुलभ नहीं हो सकी है। यह अभाव विकास-कार्यक्रमों के खोखलेपन को ही दर्शाता है। ऐसी बात नहीं कि गांवों को पीने का पानी उपलब्ध कराने की बात अब सूझी है। योजनाबद्ध आर्थिक विकास का सिलसिला शुरू होने के साथ ही गांव और शहर की इस बुनियादी आवश्यकता को पूरा करने की बात कही जाती रही है, पर दुर्भाग्य से अब तक के प्रयासों का वह सुफल सामने नहीं आ सका, जिसकी अपेक्षा थी।

व्यापक साक्षरता की बाबत भी स्थिति विशेष भिन्न नहीं है। प्राथमिक शिक्षा का साक्षरता प्रसार से कितना घनिष्ठ संबंध है, यह कहने की आवश्यकता नहीं। लक्ष्य तो यह था कि 1960 तक देश में 14 वर्ष की उम्र तक का एक भी ऐसा व्यक्ति नहीं रहेगा, जिसे पढ़ना-लिखना न आता हो। पर तथ्य यह है कि निर्दिष्ट तिथि के 21 वर्ष बाद भी देश की 70 प्रतिशत आबादी निरक्षर है।

अब रही बात औद्योगिक उत्पादन में आने वाली बाधाओं की। पिछले दो वर्ष के दौरान इन बाधाओं को दूर करने की दिशा में कई सार्थक कदम उठाए गए हैं। फिर भी उद्योग क्षेत्र में कई ऐसी त्रुटियां अब भी विद्यमान हैं, जो औद्योगिक विकास क्षेत्र में लक्ष्यों की पूर्ति के मार्ग में रोड़े अटकाती हैं। इसलिए, 20-सूत्री योजना की सूची में औद्योगिक कार्यविधि का शामिल किया जाना विशेष महत्व रखता है।

यहां 1975 के 20-सूत्री कार्यक्रम की उपलब्धियों पर दृष्टिपात कर लेना अप्रासंगिक न होगा। उपलब्धि से तात्पर्य यह नहीं है कि वह कार्यक्रम पूर्णतः सफल हुआ था। वास्तविकता यह है कि 1977 की उथल-पुथल से उसके क्रियान्वयन में भारी व्यवधान आया, पर आरंभिक दो वर्ष कुल मिलाकर सफल माने जा सकते हैं। खासकर पिछड़े वर्गों के उत्थान के लिए उल्लेखनीय काम हुए। भूमि-सुधार कार्यक्रम अगति के पंजे से निकल नहीं सका, यह सच है लेकिन यह भी सच है कि बन्धुआ मजदूरों की मुक्ति, आम-लोगों के लिए आवश्यक वस्तुएं सस्ती दरों पर उपलब्ध कराने, वन आरोपण जनसंख्या नियंत्रण जैसे कार्यक्रम काफी आगे बढ़े थे। उस कार्यक्रम के अधीन खेत मजदूरों का निम्नतम मजदूरी निर्धारित करने की प्रक्रिया गतिमान हुई और छात्रों के लिए विशेष सुविधाओं का प्रबन्ध हुआ। गन्दी बस्तियों तथा उनमें रहने वाले लोगों के कल्याण के लिए भी अनेक परियोजनाएं चलीं, ये सब बातें नए कार्यक्रम में भी हैं और इन्हें उच्च वरीयता दी गई है। ऊर्जा की कमी को पूरा करने के लिए खनिज तेल का उत्पादन बढ़ाने के अतिरिक्त बायोगैस तथा अन्य वैकल्पिक ऊर्जा साधनों का अधिकतम विकास करने की कोशिश होगी। गरीबी के निराकरण के उद्देश्य से बनाए गए दो राष्ट्रीय कार्यक्रमों समेकित ग्रामीण विकास कार्यक्रम और ग्रामीण नियोजन कार्यक्रम को क्रियान्वित करने का सघन प्रयास किया जा रहा है।

अब प्रधानमंत्री स्वयं इस कार्यक्रम पर नजर रख रही हैं, इसलिए आशा की जा सकती है कि कार्यक्रम की प्रथम पुनरीक्षा एवं मूल्यांकन से कोई निश्चित और विश्वसनीय दिशा निदेश मिल सकेगा। वैसे, योजना आयोग की मूल्यांकन समिति की नवीनतम रपट को देखने से स्पष्ट है कि कमजोर वर्गों का विकास अभियान की मुख्य धारा से जोड़ने के काम में कुछ प्रगति हुई भी है। गांव की औद्योगिक उन्नति द्वारा समाज के पिछड़े वर्गों के आर्थिक उन्नयन की दिशा में हुई प्रगति की जो झलक मिलती है, वह सर्वथा निराशाजनक नहीं है। वस्तुतः तीसरी योजना के साथ ही पिछड़े वर्गों को ऊपर उठाने का योजनाबद्ध सिलसिला शुरू हुआ था और चालू योजना में, विशेषकर 20-सूत्री कार्यक्रम में इस कार्य को उच्च वरीयता दी गई है। दूरवर्ती गांवों को देश के औद्योगिक मानचित्र पर लाने के उद्देश्य से अनेक प्रशासनिक, वित्तीय

[शेष पृष्ठ 14 पर]

ग्रामीण विकास में सहकारी संस्थाओं का योग

राकेश कुमार अग्रवाल

हमारे देश में ग्रामीण ऋण की समस्या शताब्दियों से चली आ रही है। साहूकारों द्वारा कृषकों को आजीवन ऋण के चक्र में फंसाए रखने के कारण ही कृषि शाही आयोग को यह कहने के लिए बाध्य होना पड़ा कि भारत का कृषक ऋण में जन्म लेता है, ऋण में पलता है और ऋण में ही मर जाता है। साहूकारों के ऋण के बोझ से दबा कृषक न तो अपनी फसल का ही उचित मूल्य प्राप्त कर पाता है और न ही अपनी आवश्यक आवश्यकताओं को ही पूरा कर पाता है। अभाव उसके जीवन का अंग बने रहते हैं।

अपने देश में सहकारी आन्दोलन का प्रारम्भ सन् 1904 में सहकारी ऋण समिति के माध्यम से इस उद्देश्य से हुआ कि ग्रामीण क्षेत्रों में साहूकारों, जमींदारों व ताल्लुकेदारों द्वारा कृषकों का जो आर्थिक, शारीरिक व मानसिक शोषण होता है, उसमे उन्हें मुक्ति मिल सके। ऋण समिति के रूप में प्रारम्भ हुआ यह सहकारी आन्दोलन वट-वृक्ष की तरह अपनी शाखाओं के साथ सभी क्षेत्रों में तेजी से विकसित हो रहा है। आज साख, उत्पादन, विपणन, वितरण आदि कोई भी क्षेत्र सहकारी आन्दोलन की परिधि से परे नहीं है। भारत में सहकारी आन्दोलन का प्रादुर्भाव ही ग्रामीण क्षेत्रों की समस्याओं के समाधान के लिए हुआ है। इसलिए गांवों में बसने वाली तीन चौथाई जनसंख्या के उत्थान में सहकारी संस्थाओं के महत्वपूर्ण योगदान को नकारा नहीं जा सकता। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद इस दिशा में विशेष प्रयत्न किए गए हैं।

सहकारी साख समितियां

ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि कार्य के लिए ऋण एक अनिवार्यता सी बन गई है। जहां साहूकार ग्रामीणों को अपर्याप्त मात्रा में अल्पकालीन ऋण भी कठिन शर्तों पर देते हैं, वहीं सहकारी साख संस्थाओं के माध्यम से अपेक्षाकृत कहीं अधिक आसान शर्तों पर अल्पकालीन, मध्यकालीन व दीर्घकालीन सब प्रकार के ऋण उपलब्ध हो जाते हैं। सरकार की उदारतापूर्ण नीति और सहयोग, ऋण वितरण कार्य को और भी अधिक गतिमान बनाता है।

हमारे देश में कुल ग्रामीण परिवारों में ऋण ग्रस्त परिवारों का प्रतिशत लगभग 63 है। सामान्यतया ग्रामीण उत्पादक व अनुत्पादक दोनों प्रकार के ऋण लेते हैं। यह ऋण ग्रस्तता ग्रामीण कृषक का बहुविधि शोषण करके उसको दरिद्र बनाए रखती है।

सहकारिता ग्रामीण ऋण ग्रस्तता का अत्यन्त प्रभावी समाधान प्रस्तुत करती है। सहकारिता के माध्यम से कृषकों द्वारा किया जाने वाला संगठित प्रयास उनको साहूकारों के चंगुल से बचाता है। उन्हें सस्ते ब्याज पर आसानी से ऋण उपलब्ध हो जाता है। इस प्रकार सहकारिता के माध्यम से ग्रामीण अर्थव्यवस्था को ऋण समस्या से मुक्ति दिलाने के लिए उचित साख प्रणाली की रचना होती है। कृषि साख की दृष्टि से सहकारी साख संस्थाओं को विभिन्न स्तरों पर रखा जा सकता है।

प्राथमिक सहकारी साख समितियां : ये समितियां प्राथमिक सहकारी समितियों, साधन सहकारी समितियों, क्षेत्रीय सहकारी समितियों व कृषक सेवा सहकारी समितियों के रूप में ग्राम स्तर पर संगठित होने के कारण सदस्य कृषकों से सीधा संबंध रखती हैं। ये समितियां अपने सदस्यों को अल्पकालीन व मध्यकालीन ऋण उपलब्ध कराने के अतिरिक्त बीज, खाद, कृषि उपकरण व दैनिक उपभोग की आवश्यक उपभोक्ता वस्तुओं जैसे नमक, चीनी, तेल इत्यादि का उचित मूल्य पर वितरण करती है। सदस्यों में मितव्ययता, बचत व पारस्परिक सहयोग की भावना जागृत करती है जिससे गांवों में उत्साहवर्धक वातावरण निर्मित होता है।

मई 1981 में इन समितियों की संख्या 1,16,125 थी तथा सदस्य संख्या 95.29 लाख थी। इनके द्वारा 161.77 करोड़ रुपये अल्पकालीन और 84.00 करोड़ रुपये मध्यकालीन ऋण बांटा गया।

जिला/केन्द्रीय सहकारी बैंक : प्राथमिक साख सहकारी समितियों की सहायता के लिए केन्द्रीय सहकारी बैंकों की स्थापना जिला स्तर पर की गई। ये बैंक अपनी सदस्य सहकारी समितियों को ऋण उपलब्ध कराते हैं। देश में 340 केन्द्रीय बैंकों की 6800 शाखाएं कार्य कर रही हैं।

राज्य सहकारी बैंक : इन बैंकों की स्थापना केन्द्रीय सहकारी बैंकों के संगठन व नेतृत्व के उद्देश्य से की जाती है। आवश्यकता पड़ने पर ये बैंक सहकारी प्रतिभूतियों के आधार पर रिजर्व बैंक से ऋण ले सकते हैं। भारत में 27 राज्य सहकारी बैंकों की 384 शाखाएं कार्यरत हैं।

सहकारी भूमि विकास बैंक : दीर्घकालीन ऋणों की पूर्ति के लिए तहसील व राज्य स्तर पर इन बैंकों की स्थापना होती है। ये बैंक भूमि को बंधक रख कर भूमि पर स्थायी सुधार, ट्रैक्टर, पम्पिंग सैट, ट्यूबवैल व अन्य भारी उपकरणों को क्रय करने के लिए लम्बी अवधि के लिए ऋण उपलब्ध कराते हैं। देश में 19 केन्द्रीय भूमि बंधक बैंक तथा 389 प्राथमिक भूमि बंधक बैंक हैं।

सहकारी खेती समितियां

हमारे देश में उप-विभाजन व अपखंडन के कारण खेत छोटे-छोटे तथा बिखरे हुए हैं। जिस कारण कृषि उत्पादन पर बुरा प्रभाव पड़ता है और कृषकों की आर्थिक स्थिति गिरी हुई रहती है।

सहकारी खेती में इस समस्या का समाधान निहित है। इसके अन्तर्गत कृषक स्वेच्छा से बड़े पैमाने की खेती का लाभ उठाने के लिए

अपने छोटे-छोटे भूखण्डों को मिला कर एक व्यवस्था के आधार पर खेती करते हैं ।

भारत में सहकारी खेती के लिए स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व ही प्रयत्न प्रारम्भ हो गए थे । स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद विभिन्न वर्षों में अनेक समितियां/आयोग बना कर सहकारी खेती की प्रगति के लिए प्रयत्न किए गए ।

सहकारी विपणन समितियां

मध्यस्थों की लम्बी शृंखला के कारण ग्रामीणों को अपनी उपज का उचित मूल्य नहीं मिल पाता है क्योंकि एक तो उन पर अनेक आर्थिक दबाव होते हैं और दूसरे संग्रहण, यातायात आदि साधनों की समस्या उनके उत्पाद को मध्यस्थ के हाथ कौडियों के दाम पर बेचने के लिए मजबूर करती है । अनेक बार तो ऋणदाता सरकार कृषक की फसल अपने प्रभाव के कारण औने-पौने में ही खरीद लेते हैं ।

सहकारी विपणन समितियां मध्यस्थों का उन्मूलन कर उत्पादकों को उनकी उपज का सही मूल्य दिलवाने में सहायक होती है । फलस्वरूप कृषक मध्यस्थों द्वारा होने वाले शोषण से बच जाते हैं जिससे उनकी आय में वृद्धि होती है ।

विभिन्न राज्यों में सहकारी विपणन समितियों का ढांचा त्रिस्तरीय है । प्राथमिक विपणन समितियां साधारणतः मंडी स्तर पर स्थापित की जाती ह । ये समितियां विपणन कार्य के साथ-साथ घरेलू आवश्यकता की वस्तुओं का भी विक्रय करती हैं । देश में इनकी संख्या 3,370 है । जिला/क्षेत्रीय स्तर पर 369 केन्द्रीय विपणन समितियां कार्य करती हैं । इनके साथ ही 27 राज्य स्तरीय बहूद्देशीय विपणन संघ भी कार्य करते हैं । राष्ट्र स्तर पर शीर्ष संस्था के रूप में राष्ट्रीय कृषि सहकारी विपणन संघ की स्थापना की गई है ।

सहकारी विधायन समितियां

विधायन अथवा प्रक्रिया इकाइयों में कृषकों की उपज या तो सीधे उपभोग योग्य बन जाती है या अन्य उत्पादनों में कच्चे माल के लिए तैयार हो जाती है । जैसे धान से चावल निकालना, गेहूं से आटा बनाना, गन्ने से गुड़, खांड या चीनी बनाना, तिलहन से तेल निकालना कपास से बिनौला अलग करना, रूई से सूत कातना, दलहन से दालें बनाना आदि । साधनों की कमी के कारण विधायन इकाइयां कृषक व्यक्तिगत रूप से स्थापित करने में असमर्थ रहते हैं ।

ग्रामीण क्षेत्रों में स्थापित सहकारी विधायन इकाइयां कृषकों को कम लागत पर विधायन की सुविधा उपलब्ध कराके उनके लाभ में वृद्धि करती है । परिवहन व्यय में बचत होती है । सहकारी चीनी मिलें गन्ना उत्पादकों की प्रक्रियात्मक समितियां हैं । गत अनेक वर्षों से सहकारी चीनी मिलें महत्वपूर्ण कार्य कर रही हैं ।

सहकारी दुग्ध समितियां

भारत में दुग्ध ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि के सहायक धंधे के रूप में किया जाता है । संगठित प्रयास न होने के कारण दुग्ध उत्पादन का अपेक्षित लाभ प्राप्त नहीं होता, क्योंकि यहां भी मध्यस्थ प्रभावी बने रहते हैं ।

ग्रामीण क्षेत्रों में सहकारी दुग्ध समितियां दुग्ध व दुग्ध-पदार्थों को एकत्रित कर दुग्ध उत्पादकों का हित सम्बर्द्धन करती हैं । प्राथमिक दुग्ध उत्पादक सहकारी समितियों व दुग्ध उत्पादकों के विक्रय संघों के अलावा सहकारी डेयरी भी इस क्षेत्र में कार्य कर रही हैं । ये समितियां अपने सदस्यों को ऋण देने के साथ पशुओं की नस्ल सुधारने के प्रयत्न भी करती हैं और चरागाहों का भी प्रबन्ध करती हैं ।

सहकारी गृह निर्माण समितियां

सहकारी गृह निर्माण आन्दोलन मुख्य रूप से शहरों तक ही सीमित रहा है । जबकि ग्रामीण क्षेत्रों में सहकारी गृह निर्माण समितियों के माध्यम से कच्चे पुराने मकानों के स्थान सस्ते, स्वच्छ मकानों के निर्माण की आवश्यकता है । अभी तक इस दृष्टि से किया जाने वाला प्रयास नगण्य है । ग्रामीण क्षेत्रों में ऐसी गृह-निर्माण समितियों का भविष्य उज्ज्वल है । अतः सभी स्तरों पर इसके लिए विशेष प्रयत्न किए जाने चाहिए । ऐसा करने से ग्रामीणों की एक बड़ी समस्या का अच्छा समाधान किया जा सकता है । इससे कमजोर वर्ग के लोगों का विशेष हित होगा । वैसे इस क्षेत्र में निर्माण और आवास मंत्रालय महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है ।

उपरोक्त समितियों के अतिरिक्त मत्स्य पालन सहकारी समितियां, बुनकर सहकारी समितियां आदि ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसरों को बढ़ा कर ग्रामीणों की आय में वृद्धि करती हैं जिससे उनके जीवन स्तर में सुधार होने के फलस्वरूप एक आत्म निर्भर ग्रामीण अर्थव्यवस्था की रचना होती है । ग्रामीण क्षेत्रों में सहकारी कोल्डस्टोरेज, सहकारी गोदामों आदि का निर्माण इन क्षेत्रों की प्रगति में और भी योगदान करता है ।

ग्रामीण विकास में महत्व

- सहकारी साख समितियां किसानों को हिस्सा खरीदने के लिए ब्याज रहित ऋण देकर सदस्य बनाती हैं । फिर सदस्य कृषकों की सब प्रकार से सहायता करती हैं । अतिवृष्टि या सूखे की दशा में अल्पकालीन ऋणों को भी किस्तों में परिवर्तित कर देती हैं । सम्पत्ति की प्रतिभूति के स्थान पर व्यक्तिक प्रतिभूति के आधार पर ऋण सुलभ कराती हैं ।
- निजी व्यापारियों की लूट से बचाने के लिए सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अंतर्गत दैनिक उपभोग की नियंत्रित व अनियंत्रित वस्तुएं उचित मूल्य पर उपलब्ध कराती है । कई क्षेत्रों में चल उपभोक्ता सहकारी भंडार भी ग्रामीण को वस्तुएं उपलब्ध कराने में संलग्न हैं ।
- कृषि उत्पादन बढ़ाने के लिए समितियां उन्नतशील बीज, कीटनाशक दवाएं, उर्वरक, उपकरण आदि के लिए आर्थिक सहायता देने के साथ-साथ परामर्श भी प्रदान करती हैं ।
- सहकारी खेती के माध्यम से साधनों में वृद्धि होती है । परिणामस्वरूप अधिक फसलें उगाने के साथ ही कृषि उत्पादन में वृद्धि होती है जिससे कृषकों की आर्थिक दशा सुधरती है ।
- पशु पालन का ग्रामीण अर्थ व्यवस्था में विशष महत्व है । सहकारी दुग्ध समितियों के कारण ग्रामीण मध्यस्थों के शोषण, परिवहन की कठिनाई आदि से बच जाते हैं । उनको अपने दूध का अच्छा मूल्य भी प्राप्त हो जाता है ।
- सहकारी विपणन समितियां कृषकों को मध्यस्थों द्वारा होने वाले गलत माप-तौल, अनधिकृत कटौतियों आदि से सुरक्षा प्रदान करके उनकी उपज का सही मूल्य दिलवाती हैं । फसल ऋण आदि की सहा-

यता व अन्य परामर्श भी प्रदान करती हैं ।

- सहकारी विधायन इकाइयों के माध्यम से कृषकों को उनकी उपज का उचित प्रतिफल प्राप्त होता है । इस बार चीनी मिलों को देर तक चलाने के पीछे ग्रामीणों का हित ही ध्यान में रखा गया जिससे गन्ने का अधिकतम उपयोग हो सके और कृषक को उसका पूरा मूल्य मिल सके। सहकारी चीनी मिलों का इसमें अच्छा योगदान रहा ।

- सहकारी प्रक्रियात्मक इकाइयों के ग्रामीण क्षेत्रों में स्थापित होने से नए उद्योगों को इन क्षेत्रों में खुलने का प्रोत्साहन मिलता है जिससे ग्रामीण क्षेत्रों में आर्थिक विकास के अवसर बढ़ते हैं ।

- सहकारी आन्दोलन के सिद्धांतों, आदर्शों व कार्य प्रणाली को समझने के लिए ग्रामीण क्षेत्रों में साक्षरता आवश्यक है । सहकारी समितियों के माध्यम से ग्रामीण क्षेत्रों में प्रौढ़ शिक्षा के प्रसार के प्रयत्न किए गए है । ग्रामीणों में जागरूकता के लिए यह आवश्यक भी है ।

- विभिन्न क्षेत्रों में कार्य करने वाली सहकारी संस्थाएं ग्रामीण जनसंख्या के बड़े भाग को किसी न किसी रूप में अपनी सेवाएं उपलब्ध कराके लाभ पहुंचा रही हैं । फलस्वरूप उनके रहन-सहन के स्तर में सुधार होने से ग्रामीण जीवन में नए उत्साह का संचार हो रहा है ।

शनैः शनैः ग्रामीण क्षेत्रों में विकास की दृष्टि से सहकारी संस्थाओं की भूमिका बढ़ती जा रही है । इन संस्थाओं ने अनेक गांवों की तो काया पलट दी है । जिन स्थानों पर सहकारी समितियां गंदी राजनीति से दूर हैं और एक व्यक्ति अथवा परिवार का उन पर वर्चस्व नहीं है,वहां सहकारी समितियों ने अच्छा कार्य किया है । अभी ग्रामीण क्षेत्रों में विकास की बहुत संभावनाएं हैं। इसलिए आवश्यक है कि सहकारी संस्थाएं ग्रामीणों के आर्थिक व सामाजिक उत्थान की दृष्टि से अपने कार्य का विस्तार करें । □

राकेश कुमार अग्रवाल
प्रवक्ता, एम० एस० बी० (पी० जी०) कालेज
हापुड़ (उ० प्र०)

बीस सूत्री आर्थिक कार्यक्रम

[पृष्ठ 11 का शेषांश]

एवं राजकोषीय उपाय किए गए हैं और योजना आयोग के योजना मूल्यांकन संगठन की नवीनतम रपट के अनुसार इन उपायों के फलस्वरूप पिछड़े इलाकों में औद्योगिक प्रगति का बीजारोपण हो चुका है ।

कार्यक्रम के मूल्यांकन के लिए 13 राज्यों के 14 जिलों को चुना गया था । इनमें पंजीकृत औद्योगिक इकाइयों की संख्या 1969–70 की 10 हजार 261 से लगभग 27 प्रतिशत बढ़कर 1975–76 में 13 हजार 26 हो गई । निश्चय ही यह एक सराहनीय उपलब्धि है । मूल्यांकन के लिए जिन राज्यों के एक-एक जिले को चुना गया था वे हैं आन्ध्र प्रदेश, असम, बिहार, केरल, महाराष्ट्र, उड़ीसा, पंजाब, तमिलनाडु, पश्चिम बंगाल और उत्तर प्रदेश, (इसके दो जिले शामिल किये गये थे) । सरकारी प्रोत्साहन सहायता-प्राप्त करने वाली जिन इकाइयों को मूल्यांकन के लिए चुना गया उनकी संख्या 352 थी ।

इन इकाइयों की जांच पड़ताल से यह स्पष्ट हुआ है कि सरकारी सहायता प्रोत्साहन कार्यक्रम पिछड़े इलाकों में लघु उद्योगों के विस्तार में काफी सहायक रहा है । पर, एक कमजोरी यह नजर आई कि उपलब्ध सहायता का लाभ उठाने में वे इकाइयां अधिक सफल रहीं, जो आकार में अपेक्षाकृत बड़ी हैं और तमिलनाडु, महाराष्ट्र और कर्नाटक जैसे औद्योगिक दृष्टि से प्रगतिशील राज्यों में अवस्थित हैं ।

यहां यह उल्लेख कर देना अप्रासंगिक न होगा कि संतुलित आर्थिक विकास के उद्देश्य को पूरा करने के लिए पहली बार 1970 में केन्द्र सरकार ने दो महत्वपूर्ण वित्तीय उपाय किए थे । एक स्कीम थी पिछड़े इलाकों में स्थापित उपयोगों को रियायती ब्याज पर ऋण देने की । दूसरी स्कीम ऐसे उद्योगों की पूंजी में सरकारी "सबसिडी" देने की थी । ये दोनों स्कीमें तब से चालू हैं और ऐसा देखा गया कि प्रत्यक्ष सरकारी सहायता के फलस्वरूप पिछड़े इलाकों की ओर उद्योग बड़े पैमाने पर आकृष्ट हुए हैं । दूसरे शब्दों में, इन दोनों स्कीमों के बहुत ही सार्थक परिणाम निकले हैं ।

कार्यक्रम मूल्यांकन संगठन ने कई उपयोगी सुझाव दिए हैं जिनमें एक सुझाव यह है कि पिछड़े इलाकों के विकास के लिए रियायती ऋण देने की केन्द्रीय स्कीम को नया रूप दिया जाना चाहिए । ऋण उपलब्ध कराते हुए इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि क्षेत्र विशेष की आर्थिक संभावनाएं क्या हैं? अधिक से अधिक क्षेत्रों को सरकारी स्कीमों का लाभ पहुंचाने के लिए आवश्यक पृष्ठभूमि तैयार की जानी चाहिए । इस बात पर ध्यान दिया जाना चाहिए कि क्षेत्र विशेष में उद्योग विशेष की स्थापना का वहां के शिक्षित बेरोजगारों पर क्या प्रभाव होगा, स्थानीय उद्यम-प्रवृत्ति कितनी प्रोत्साहित होगी और उसके कुल आर्थिक परिणाम क्या होंगे ?

निश्चय ही प्रधानमंत्री द्वारा घोषित नए 20-सूत्री कार्यक्रम को छठी योजना में जो वरीयता दी गई है, उससे यह आशा बंधती है कि योजना अवधि के अन्त तक गरीबी रेखा से नीचे जाने वाले लोगों की संख्या में पर्याप्त कमी हो सकेगी और यदि यह आशा फलवती होती है, तो इस कार्यक्रम का आगे का रास्ता और आसान हो जाएगा । □

मानव को सेवा में कृषि वानिकी

✻

रूपनारायण काबरा

उड़ीसा के गंजाम जिले में रामगिरि क्षेत्र में लगाए गए नारंगी के पेड़ ।

किसी भी राष्ट्र की वन-सम्पदा पर उसकी प्रगति एवं विकास बहुत निर्भर करता है। वन-सम्पदा औद्योगिक विकास को ही नहीं अपितु राष्ट्र की जलवायु, कृषि एवं जीवनयापन इत्यादि सभी को प्रभावित करती है। भारत में समग्र भौगोलिक क्षेत्र का केवल 23 प्रतिशत ही वन-क्षेत्र है जोकि लगभग 750000 वर्ग किलोमीटर है। विश्व के मानक औसत की तुलना में भारत का वन-क्षेत्र क्षेत्रफल एवं जनसंख्या के अनुपात में अत्यल्प है। "राष्ट्रीय वन नीति" के अनुसार वन-भाग भौगोलिक क्षेत्र का 33.3 प्रतिशत होना जरूरी है। पहाड़ी क्षेत्र में 60% और मैदानी भाग में 20% तक विकसित किए जाने का लक्ष्य है। वातावरण में पारिस्थितिक संतुलन बनाए रखने के लिये ये लक्ष्य विशेष ध्यान देने योग्य हैं। भारत में व्याप्त भयंकर ऊर्जा संकट एवं घरेलू ईंधन की समस्या को ध्यान में रखते हुये इस दिशा में विशेष एवं सुनियोजित कार्यक्रम अत्यावश्यक है। खाद्य सामग्री, ईंधन एवं ऊर्जा की समस्या के समाधान हेतु तथा पर्यावरणीय संतुलन एवं वन विकास के लिए हमें कृषि वानिकी और सामाजिक वानिकी को पूरी तरह समझना है और अपनाना है।

जिस प्रकार देश की नियमित सेना के अतिरिक्त एन० सी० सी० एक द्वितीय रक्षा पंक्ति है उसी प्रकार कृषि-वानिकी एवं सामाजिक-वानिकी वन विनाश से उत्पन्न क्षतिपूर्ति हेतु मानव द्वारा किए जा सकने योग्य सरल एवं व्यावहारिक प्रायोजनाएं हैं। जिनका विशेष महत्व है।

कृषि-वानिकी वन विकास की वह प्रायोजना है जो विशेष रूप से खेत के लिए ही, खेत के पास ही और खेती में सहायक सिद्ध हो।

देश में व्याप्त भयंकर ऊर्जा संकट से मुक्ति पाने के लिए वन विकास अत्यन्त आवश्यक है। तेजी से क्षय हो रहे वनों की प्रतिपूर्ति बहुत जरूरी है ।

कृषि-वानिकी पहाड़ी क्षेत्रों के सघन वनों से भिन्न है। इसके लिए चुने गए पेड़ जल्दी बढ़ने वाले हों और वे किसी न किसी रूप में चाहे ईंधन देकर, पशुचारा देकर, फल या इमारती लकड़ी देकर अथवा हरी खाद ही देकर किसान के लिए सीधे रूप से लाभकारी हों और उसकी आर्थिक आवश्यकताओं की प्रति पूर्ति करने वाले हों। इस प्रायोजना के अन्तर्गत खेत की मेंड़, खेत के रास्ते, ट्यूबवैल तथा नहर इत्यादि के किनारे पेड़ लगाए जाते हैं।

सामाजिक-वानिकी का लक्ष्य है पेड़ पौधों से मानव की कृतज्ञतापूर्ण मित्रता को विकसित करना, क्योंकि पेड़ अत्यन्त ही निष्ठा से मानव जाति की आर्थिक एवं पारिस्थितिक धरातल पर सहायता करते हैं। सामाजिक-वानिकी के अन्तर्गत विशेष रूप से सड़क, रेलवे लाइन, नहर के किनारे, सार्वजनिक भवन, धार्मिक स्थल, विद्यालयों के परिसर, आवासीय भवन, रास्तों पर एवं गांव-शहर की सार्वजनिक भूमि पर वृक्ष लगाए जाते हैं। यह योजना केवल कृषि से सीधी जुड़ी न होकर सौन्दर्यवर्द्धन, छाया, पर्यावरणीय एवं पारिस्थितिक संतुलन एवं पक्षियों के आवास इत्यादि उद्देश्यों पर केन्द्रित होती है। व्यापक दृष्टि से कृषि वानिकी सामाजिक-वानिकी से परे नहीं है।

क्षेत्र की उपयुक्तता के अनुसार ही पेड़ लगाए जाने हितकर रहे, यथा :—

1. गहरी मिट्टी वाली जलधारा के किनारे का क्षेत्र—इमारती लकड़ी एवं ईंधन वाले पेड़।

2. छिछली मिट्टी वाला क्षेत्र—चरागाह विकास हेतु।

3. सड़क, सार्वजनिक स्थल एवं विद्यालय परिसर—छायादार, सजावट वाले पुष्पयुक्त पेड़।

4. खेत की मेड़ के चारों ओर, बंजर भूमि, पहाड़ी ढलान इत्यादि शिखर युक्त पेड़, ईंधन, इमारती लकड़ी, पशुखाद्य, चारा, हरी खाद इत्यादि देने वाले पेड़।

इन कार्यक्रमों की क्रियान्विति हेतु ग्राम्य-वन-समिति, नवयुवक मंडल, महिला मंडल, इत्यादि के गठन के साथ ही साथ समग्र क्षेत्र की सक्रियता आवश्यक है। नेहरू युवा केन्द्र इस दिशा में पर्याप्त कार्य कर सकते हैं।

प्राचीनकाल में लोग वृक्षों की पूजा करते थे। पेड़ की टहनी भी काटना अपराध माना जाता था। पेड़ लगाना एक अत्यन्त ही पुण्य-कार्य समझा जाता था। अग्नि पुराण में उल्लेख है :—

"जो मनुष्य सर्वजनहिताय पेड़ लगाता है उसे न केवल शान्ति एवं सुख उपलब्ध होते हैं अपितु वह भूत एवं भविष्य के अपने 30000 पितरों को पितर योनि से मुक्त कर देता है।"

बड़े-बड़े वन महोत्सव होते हैं पर बाद में उन पौधों को लोग भूल जाते हैं, उपेक्षा कर देते हैं और वे बिचारे बिना देख-रेख के बिना प्यार-प्रेम के मर जाते हैं। ये कार्यक्रम नियमित भी तो नहीं होते। किसी "बड़े आदमी" ने कह दिया तो हो गया अन्यथा किसी को कोई रुचि नहीं। इन कागजी आंकड़ों का कोई नतीजा नहीं निकलता। काश! हमारे देश में भैंरुदान सरीखे सौ पचास समर्पित व्यक्तित्व सामने आ सकें जिसने अपनी व्यक्तिगत लगन और साहस से अपने सहयोगी बद्रीनारायण के साथ मिलकर बीकानेर जिले के नायासर से सीथल जाने वाली तीन किलोमीटर लम्बी सड़क को तीन सौ पच्चीस नीम के पेड़ों से आच्छादित कर दिया। और सुन्दरलाल बहुगुणा के वृक्षों की सुरक्षा की दिशा में चलाये जा रहे "चिपको" आन्दोलन से कौन परिचित नहीं है।

रेगिस्तान एवं सूखा या अनावृष्टि मानव निर्मित हैं, मानव की स्वयं की भूल के परिणाम हैं। अपनी स्वार्थ सिद्धि हेतु अंधाधुंध पेड़ काटना, पशुओं को अंधाधुंध चराना और पेड़ नहीं लगाना, इन्हीं कारणों से वन-विनाश होता रहा है। वन विकास धरती को उपजाऊ बनाता है तो वन-विनाश रेगिस्तान एवं सूखे को जन्म देता है। पेड़ों की कमी से वायुमंडल की आर्द्रता अत्यन्त कम हो जाती है और बादल आर्द्रता के अभाव में संघनित ही नहीं हो पाते और इस प्रकार वृष्टिपात कम हो जाता है।

जलवायु पर वनों का प्रभाव

सामाजिक वानिकी एवं कृषि वानिकी प्रायोजनाओं की उपयोगिता को समझने के लिए हमें वनों के जलवायु इत्यादि पर पड़ने वाले प्रभाव को समझना पड़ेगा।

1. पेड़ों की छतरी (Canopy) सूर्य की किरणों के हानिकारक विकिरण एवं प्रकाश की तीव्रता को कम करती है।

2. आपेक्षिक आर्द्रता में 3 से 10 प्रतिशत तक वृद्धि हो जाती है।

3. वाष्पन में कमी होने से आर्द्रता बनी रहती है।

4. जल संरक्षण एवं जल संचयन में वृद्धि

5. वायु प्रवाह में अवरोध

6. द्रव-अवक्षेप एवं वृष्टिपात में वृद्धि

7. पेड़ों द्वारा निर्मित रक्षा पेटी, सौर-विकिरण, ताप-तीव्रता, वृष्टि प्रहार, वायु प्रवाह, तीव्र वाष्पन एवं मृदा-अपरदन इत्यादि सभी क्षेत्रों में सुरक्षा प्रदान करती है।

8. मृदा की अन्तर्निहित शक्ति एवं गुणों की सुरक्षा

9. पेड़ों की छतरी मृदा को सीधे प्रवाह एवं प्रहार से बचाती है।

10. मृत पत्तियों की परत जल संचयन में वृद्धि एवं वाष्पन में कमी करती है।

11. वृक्ष वातावरण को शान्त एव मनोरम बनाते हैं।

12. वातावरण की कार्बन डाइ आक्साइड को पेड़ स्वयं लेकर हमें वायु प्रदूषण से बचाते हैं तथा बदले में प्राण वायु प्रदान करते हैं।

कृषि वानिकी की व्यवस्था के निम्न बिन्दु हैं:—

1. कार्यकर्ताओं के प्रशिक्षण द्वारा।

2. सुरक्षा व्यवस्था हेतु नियमित रखवालों की व्यवस्था।

3. अनुभवी वनपाल की सेवायें।

4. वन विभाग एवं कृषि विभाग एवं नर्सरी द्वारा बीज एवं रोपण सामग्री की व्यवस्था।

5. अर्थ व्यवस्था : घास, ईंधन, इमारती लकड़ी, पेड़ की पत्तियों एवं टहनियों का पशुचारा तथा फल इत्यादि बेचकर।

कृषि-वानिकी में लगाए जाने वाले पेड़ों पर यदि कीट एवं पक्षी आश्रय बनाने लगते हों तो कीट विनाशक छिड़का जाए। साथ ही यह भी सच है कि पक्षी फसल को खाकर उतना नुकसान नहीं पहुंचाते जितना हानिकारक कीटों को खाकर लाभ पहुंचाते हैं।

राजस्थान के अर्द्धशुष्क प्रदेश में कृषि-वानिकी एवं सामाजिक-वानिकी योजना के अन्तर्गत उपयोग एवं उपयुक्तता की दृष्टि से निम्न पेड़ ठीक हैं :—

शीशम, इजरायली बबूल, खेजड़ी, यूक्लिपटस (सफेदा), लेसुआ (लसौड़ा), छलील, सिरस, अरडू, रोहिड़ा, आस्ट्रेलियाई बबूल, सेमल, विलायती बबूल, नीम, बकान, कीकर, झाड़फानूस, अमलतास, कैर, पीलू, ढींड, गून्दी, सीताफल, करंज, आकाशीनीम, पांगरा, बरना, अशोक, सोअन्जना तथा बेर इत्यादि।

वानिकी एक दीर्घावधि प्रायोजना है और कृषि की भांति यह शीघ्र फलदाई नहीं है, यह सब धैर्य एवं श्रम-साध्य है :—
वन विभाग का भी दायित्व है कि वह :—

1. संबंधित अधिकारियों की अभिरुचि एवं चेतना जाग्रत करें ताकि वे रुचिपूर्वक वन क्षेत्रों का संस्थापन, विकास एवं प्रसार कर सकें।

2. आर्थिक महत्व की नस्ल के पेड़ों को ध्यान में रखते हुए योजना बनावें।

3. पौध एवं बीज वितरण हेतु बीज भंडार एवं नर्सरी की व्यवस्था करें।

4. पेड़ों के रोपन एवं संवर्द्धन का पर्यवेक्षण करें एवं आवश्यकतानुसार तकनीकी सहायता उपलब्ध करावें।

5. प्रचार एवं प्रसार द्वारा लोगों की चेतना एवं अभिरुचि जाग्रत करें।

रेगिस्तान बने नहीं बनाए गए हैं। सूखा एवं अनावृष्टि स्वयं मानव द्वारा किए गए वन विनाश का ही तो परिणाम है। हम अपने इस पाप का प्रायश्चित पेड़ लगाकर ही तो कर सकते हैं। और यही होगी मानव की प्रकृति के प्रति श्रद्धा, उसके प्रति प्रेम और उसकी पूजा। तब प्रकृति निश्चय ही देगी हमें अपना आशीर्वाद एवं वरदान। हमारी धरती लहलहा उठेगी, पक्षियों के संगीत से गूंज उठेगी, मौसम सुहाने होंगे; न होगी बाढ़ और न होगी अनावृष्टि, और हमारी फसलें भरपूर होंगी। हमारे औद्योगिक संस्थान विकसित होंगे, ऊर्जा की समस्या स्वतः ही हल हो जाएगी। हम और हमारे पशु सुखी एवं स्वस्थ होंगे। और तब पग-पग पर पसरा प्रकृति का सौन्दर्य भौतिकवाद से ग्रस्त मानव को एक अनुपम शान्ति देगा।

वन श्री त्राण, विश्वकल्याण! □

रुपनारायण काबरा,
व्याख्याता,
राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय,
जोबनेर (जयपुर–राजस्थान) 303329

जीवन मेरे गांव में

सुख की बीन बजाता चलता
जीवन मेरे गांव में।
श्रम की ताल लगाता चलता,
जीवन मेरे गांव में।

इधर हंसे छप्पर की महफिल,
सजे प्रीत का डेरा।
उधर चहकता तरु-शाखों पर
अद्भुत नीड़-बसेरा।
यहां बसे भोली आंखों में
सपने उजले-उजले,
किरणों का डोला ले आता
हर दिन नया सवेरा।
कलियों से बतियाता चलता
जीवन मेरे गांव में।
श्रम की ताल लगाता चलता ....

नील गगन, मदमस्त पवन, ये—
महकी-महकी रातें।
अनगिन तारे झूम-झूम कर
करें चांद से बातें।
थककर सोया गहरी निद्रा
खलिहानों का राजा,
जो जग में बांटा करता है
ममता की सौगातें।
पग-पग स्वर्ग बसाता चलता
जीवन मेरे गांव में।
श्रम की ताल लगाता चलता .....

—भगवती प्रसाद गौतम
पशु चिकित्सालय के समीप
भवानी मंडी-326502
जिला झालावाड़ (राज०)

कृषि में सांख्यिकीय अनुसंधान का महत्व

※

अखिलेन्द्र पाल सिंह

आज से लगभग 15–16 वर्ष पूर्व जब प्रथम मानव ने चन्द्रमा पर पदार्पण किया तो पृथ्वीवासी विज्ञान के चमत्कार को देखकर दंग रह गए और विज्ञान की भूरी-भूरी प्रशंसा की। उस समय वैज्ञानिकों को छोड़कर शायद ही दो-चार व्यक्ति ऐसे होंगे जिन्होंने सांख्यिकी का महत्व भी पहचाना होगा। निस्संदेह अपोलो-11 को चांद पर उतारने की सफलता सांख्यिकीविदों की अनावरत साधना व अध्यवसाय के बिना संभव न होती। इसका कारण, चांद पर उतरने के लिए गणित के विभिन्न पेचीदा सूत्रों से, जो अनेक प्रतिफल मिले, उनका उपयोग अपोलो–11 की गतिविधियों के नियंत्रण में काम आया। इस प्रकार हम देखते हैं कि सांख्यिकी का विज्ञान में बड़ा ही महत्व है जिसकी मदद से तथ्यों को संक्षिप्त और स्पष्ट रूप में प्रस्तुत करना तथा तथ्यों की तुलना करना, पूर्वानुमान में सहायता देना और उचित नीतियों के निर्धारण में सहायता देना है।

पहले-पहल भारतीय कृषि में सांख्यिकी का कोई विशेष महत्व न था किन्तु जैसे-जैसे समय बीतता गया सांख्यिकी विज्ञान कृषि जगत का एक महत्वपूर्ण अंग बन गया!

सर्वप्रथम 21 मई, 1954 में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् ने सांख्यिकी के महत्व को पहचान कर एक सांख्यिकीय कक्ष की स्थापना की जिसका कार्य कृषि संबंधी आंकड़े एकत्रित करना, उनका विश्लेषण करना एवं नीति निर्धारण में योगदान करना था। ज्यों-ज्यों समय बीता, कृषि सांख्यिकीय का कार्य-क्षेत्र व्यापक होने के साथ-साथ सांख्यिकीय कक्ष का भी प्रसार हुआ और इसका नतीजा यह हुआ है कि आज वह छोटा सा कक्ष अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर भारतीय कृषि सांख्यिकीय अनुसंधान संस्थान का रूप धारण कर गया। इस संस्थान ने पिछले दिनों जो अनुसंधान किए हैं उनमें कृषि नियोजन के लिए आवश्यक आंकड़े संकलित किए गए। विभिन्न आंकड़ों के विश्लेषण और अध्ययन के आधार पर कृषि निवेशों के मानदण्डों का निर्धारण किया गया है और इन बातों का अध्ययन किया गया कि उर्वरक, सिंचाई आदि की क्या अनुक्रिया होती है। इसके लिए न केवल अनुसंधान केन्द्रों में बल्कि किसानों के खेतों पर भी प्रयोग किए जाते हैं। इस संस्थान ने न्यूनतम लागत से विभिन्न कृषि आंकड़ों को एकत्रित करने की तकनीकें तथा फसल कटाई सर्वेक्षण तकनीकें विकसित की हैं। इतना ही नहीं, यह संस्थान आंकड़े संकलित कर दिशा-निर्देश भी करता है।

कुछ वर्ष पूर्व संस्थान द्वारा यह रहस्योद्घाटन किया गया था कि द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान बंगाल के भीषण अकाल का कारण खाद्यान्न के गलत आंकड़ों का उपलब्ध होना था। बाद में विस्तृत खोजबीन के उपरान्त पता चला कि आंकड़ों के संकलन का कोई व्यवस्थित व वैज्ञानिक आधार न था। आंकड़े भी विश्वसनीय न थे। यदि उस समय खाद्यान्न के ठीक आंकड़े उपलब्ध हो जाते तो हजारों आदमियों को मृत्यु के मुख में जाने से बचा लिया जाता। 1940 में विस्तृत खोजबीन की गई और तब खाद्यान्नों की उपज का अनुमान लगाने के लिए वैज्ञानिक विधियां विकसित की गई। बाद में इस प्रकार के विश्लेषणों के आधार पर फसल काटने के प्रयोगों की तकनीकें विकसित की गई और उन्हें राज्यों ने भी अपनाया।

ये तो थी 1940 तक की प्रगति। उसके बाद इस संस्थान में अनेक बदलाव आए और नवीन तकनीकों के साथ-साथ संकलित आंकड़ों के समुचित विश्लेषण और उनकी परिशुद्धता के लिए संस्थान ने कम्प्यूटर प्रणाली की सुविधा का भी समावेश किया। भारतीय कृषि सांख्यिकीय अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली में सर्वप्रथम 1965 में कम्प्यूटर की सुविधा प्राप्त की गई। उस समय इस वैज्ञानिक संस्थान में एक आई० बी० एम० 1620 कम्प्यूटर स्थापित किया गया। इस पद्धति का प्रयोग बहुत शीघ्र सभी कृषि अनुसंधान संस्थाओं, कृषि विश्वविद्यालयों तथा कुछ अन्य संस्थाओं के छात्रों तथा अनुसंधान के लिए किया जाने लगा। कम्प्यूटर का प्रयोग अनवरत रूप से दिन-रात होने लगा। अनेकानेक जटिल समस्याओं का समाधान, जो कि कृषि वैज्ञानिकों के लिए साधारण कैलकुलेटरों पर संभव न था, इस कम्प्यूटर से होने लगा परन्तु कुछ और समस्याओं का समाधान, जिनके आंकड़ों का विस्तार बहुत अधिक था, इस कम्प्यूटर से संभव न था। इसके अतिरिक्त, इस कम्प्यूटर का उपयोग सूचना संसाधन तथा सूचना उद्धरण तंत्र में, जिनका उपयोग कृषि सूचना विज्ञान में बहुत आवश्यक है, नहीं हो सकता था। इन समस्याओं को ध्यान में रखते हुए 1977 में एक तृतीय पीढ़ी का आधुनिक कम्प्यूटर्स बरोज़ बी-4700 संस्थापित किया गया। इसमें आधुनिक कम्प्यूटरों के सभी साधन उपलब्ध हैं जिनका और भी विस्तार किया जा सकता है। यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि आज भारतीय कृषि सांख्यिकीय अनुसंधान की उन्नति का कारण इस कम्प्यूटर का योगदान है। कम्प्यूटर पर सभी प्रकार के अंकीय तथा तर्कसंगत संक्रियाएं कर

की सुविधा है। वैज्ञानिकों को जिस रूप में परिणाम सारणी अपने प्रतिवेदन के लिए चाहिए, उसी रूप में मुद्रित हो सकती है।

इस समय संस्थान में 7 प्रभाग हैं, जैसे— प्रतिदर्श सर्वेक्षण क्रिया-पद्धति, फसल विज्ञान, फसल पूर्वानुमान पद्धति, अर्थमिति विश्लेषण, प्रशिक्षण एवं मौलिक अनुसंधान, कम्प्यूटर विज्ञान एवं संख्यात्मक विश्लेषण और पशु-विज्ञान प्रभाग। इन प्रभागों में कार्यरत सभी वैज्ञानिक अपने-अपने क्षेत्र में अथक प्रयास एवं अध्यवसाय से अनुसंधान कर संस्थान की उन्नति में अपना योगदान दे रहे हैं। इसके अतिरिक्त, यह संस्थान भा० कृ० अ० प० द्वारा वित्तीय सहायता प्राप्त परियोजनाओं में सांख्यिकीय पहलुओं की समस्याओं में तकनीकी सलाह और मार्गदर्शन करने की महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

भारतीय कृषि सांख्यिकीय अनुसंधान संस्थान में तीन प्रकार के प्रशिक्षण दिए जाते हैं। पहले प्रकार के पाठ्यक्रमों के अन्तर्गत दो पाठ्यक्रम हैं एक तो सीनियर सर्टिफिकेट कोर्स, दूसरा प्रोफेशनल स्टेटिस्टिशियन सर्टिफिकेट कोर्स। दूसरे प्रकार के पाठ्यक्रम में सांख्यिकी और संगणक प्रोग्रामिंग का डिप्लोमा दिया जाता है। तीसरे प्रकार का पाठ्यक्रम उन लोगों के लिए है जो कृषि सांख्यिकी में एम० एस० सी० या पी० एच० डी० करना चाहते हैं। इन प्रशिक्षुओं को न केवल व्यावसायिक प्रशिक्षण दिया जाता है बल्कि उन्हें विभिन्न स्थलों पर ले जाकर प्रतिदर्श सर्वेक्षण अनुसंधान कार्य भी सौंपा जाता है। इसके अतिरिक्त, संस्थान में समय-समय पर सम्मेलन और संगोष्ठियों द्वारा प्रशिक्षार्थियों को ज्ञान-वर्द्धन तथा विचारों के आदान-प्रदान का अवसर मिलता है। संस्थान में न सिर्फ भारतीय छात्रों को ही प्रशिक्षण दिया जाता है अपितु अनेकानेक विकासशील देशों के छात्र भी यहां प्रशिक्षण का लाभ प्राप्त करने आते हैं।

आज भारतीय कृषि सांख्यिकीय अनुसंधान संस्थान ने अपनी कुशल सेवाओं की बदौलत ही देश विदेश में ख्याति अर्जित की है। अब यह संस्थान डा० प्रेम नारायण के निर्देशन में प्रगति के पथ पर अग्रसर है और प्रशिक्षार्थियों के उज्ज्वल भविष्य के लिए वरदान बन गया है। □

बन्धुआ मजदूरों के पुनर्वास की समस्या

लक्ष्मीधर मिश्र

शताब्दियों से चली आ रही बन्धुआ मजदूर प्रथा विभिन्न रूपों में प्रचलित है। यह अत्यन्त घातक प्रथा है और यह सभ्य मानव पर एक धब्बा है। बन्धुआ मजदूर प्रथा (उन्मूलन) अधिनियम, 1976 के द्वारा इस प्रथा का उन्मूलन किया गया। इस तरह यह खुशी की बात है कि यह अब केवल भूतकाल की बात रह गई है और कानून द्वारा अब अवैध घोषित कर दी गई है। कानूनी तरीके चाहे वह कितने भी सक्षम क्यों न हों तब तक प्रभावी नहीं हो सकते जब तक उन्हें समुचित सामजिक आर्थिक सुरक्षा साधनों का सहारा प्राप्त न हो। यह सामाजिक चेतना का विकल्प नहीं है और न ही इससे हमें आत्मसन्तुष्टि होनी चाहिए। यही वह बात है जो मुक्त बंधुआ मजदूरों के पुनर्वास के महत्व का बोध कराती है। (जब तक विधायी स्वतन्त्रता आर्थिक स्वतन्त्रता की पूरक न हो तब तक लाभदायक सिद्ध नहीं हो सकती है)। पुनर्वास मानसिक और आर्थिक दोनों तरह से होना चाहिए। इसमें प्रथम भी उतना ही महत्वपूर्ण है जितना दूसरा। और सत्य तो यह है कि दोनों एक दूसरे के बिना अधूरे हैं। अतः पुनर्वास को अधिक अर्थपूर्ण बनाने के लिए दोनों ही बातों का विशेष ध्यान रखना होगा।

बन्धुवा मजदूर पहले समाज से निकाले हुए थे। वे अब मुक्त प्राणी हैं। अर्थ अर्जन हेतु अब वे स्वतन्त्र हैं और किसी भी अन्य मनुष्य की तरह अपना निर्वाह अच्छी तरह से कर रहे हैं। आवश्यकता पड़ने पर अब उन्हें सूदखोरों से पैसा लेने की आवश्यकता नहीं है। आवश्यकता इस बात की है कि उन्हें मानव अधिकारों के प्रति सजग किया जाए। मानसिक रूप से उन्हें यह बताने और आशान्वित करने की जरूरत है कि अब ऋण लेकर ही उन्हें अपना जीवन चलाने की आवश्यकता नहीं है। मानसिक रूप से पुनर्वास इसी रूप में किया जा सकता है। जब तक ऐसी परिस्थितियां पैदा नहीं की जाती कि मुक्त बन्धुआ मजदूरों को मुक्त मानव की मान मर्यादा, सुन्दरता आदि का बोध हो, तब तक ऋण-दासता की ओर उनके पुनः जाने की हर सम्भावना बनी रहेगी।

मुक्त किए गए बन्धुआ मजदूरों में जागरूकता और आत्मविश्वास पैदा करने के लिए जिला प्रशासक के रूप में कलक्टर (जिला मजिस्ट्रेट) की निर्णायक भूमिका है। जिला स्तर पर सतर्कता समिति का अध्यक्ष होने के नाते उसे समय-समय पर उन स्थानों पर बैठक का आयोजन करना चाहिए जहां बन्धुवा मजदूरों को बसाया गया है। व्यक्तिगत और सामुदायिक रूप से उसे उनकी सभी शिकायतों को सुनना चाहिए तथा तुरन्त उनके निवारण का प्रयास करना चाहिए।

मुक्त हुए बन्धुआ मजदूर, ऋण बंधता से मुक्त होने के पश्चात् भी गरीबों में गरीब और कमजोरों में कमजोर और ग्राम समुदाय के शक्तिशाली और प्रभावशाली गुटों, जिन्होंने उन्हें कभी बन्धुआ रखा था और आज भी ग्रामीण जीवन को प्रभावित करते हैं, के अत्याचारों और दबाव के कारण असुरिक्षत हैं। वे उनके अधीन रहते हुए, कुछ अवसरों को छोड़कर विभिन्न सामाजिक और नागरिक आवश्यकताओं का विरोध नहीं कर सकते। केवल कलक्टर ही जो जिला मजिस्ट्रेट भी है नागरिक अधिकारों की सुरक्षा अधिनियम के उपबन्धों के कठोर प्रवर्तन द्वारा ही ऐसी प्रवत्तियों को नियन्त्रित करने की स्थिति में है और उसे यह सुनिश्चित करना चाहिए कि कोई भी व्यक्ति किसी भी रूप में नागरिक आवश्यकता और सामाजिक भेदभाव का शिकार न बने। वही केवल इस कानून के कठोर प्रवर्तन द्वारा मुक्त बन्धुआ मजदूरों सहित कमजोर वर्गों की सुरक्षा और निश्चिन्तता, जो उनके मानसिक पुनर्वास

के लिए अत्यन्त आवश्यक है, के प्रति उन्हें आश्वस्त कर सकता है ।

कलक्टर की भूमिका में अगला कदम आर्थिक उपायों की कड़ी द्वारा मुक्त बन्धुआ मजदूरों का शारीरिक और आर्थिक पुनर्वास आता है । राष्ट्रीय सर्वेक्षण के अनुसार मुक्त बन्धुआ मजदूरों में से 66 प्रतिशत अनुसूचित जाति और 18 प्रतिशत अनुसूचित जन-जाति के हैं । उनकी आर्थिक उन्नति के लिए हमारे पास बहुत सी योजनाएं और कार्यक्रम हैं जैसे :—अनुसूचित जाति के विकास के लिए विशेष संघटक योजना, आदिवासी उप-योजना, सम्पूर्ण ग्रामीण विकास योजना, राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार योजना, अनुसूचित जाति को वित्त निगमों द्वारा सहायता अनुसूचित जन-जाति विकास निगम आदि-आदि । अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जन-जातियों के पूर्ण विकास कार्यक्रमों में उचित समन्वय और उनके कार्यान्वयन का उत्तरदायित्व जिला कलक्टर पर है, अतः उसे इस स्थिति में होना चाहिए कि यह अपने जिले के मुक्त बन्धुआ मजदूरों के अच्छे और अधिक उद्देश्यपूर्ण पुनर्वास हेतु विभिन्न योजनाओं में तालमेल बैठा सके ।

शारीरिक पुनर्वास में कुछ मौलिक बातें जैसे निवास की जगह व कृषि भूमि का आवंटन, कम लागत पर निवास की व्यवस्था तथा भूमि विकास का उपबन्ध आदि निहित है और आर्थिक पुनर्वास में उत्पादक सम्पत्तियां जैसे पशु पालन, परम्परागत शिल्प-कला को बढ़ावा देने, निपुणता प्राप्त करने के लिए प्रशिक्षण देना तथा उपभोग और विकास दोनों के लिए ऋण का प्रबन्ध करना आदि उपबन्ध हैं ।

मुक्त बन्धुआ मजदूरों में अधिकतर भूमि-हीन कृषि मजदूर हैं । शारीरिक पुनर्वास के लिए सर्वप्रथम भूमिहीनता को समाप्त करना एक महत्वपूर्ण पहलू है । भूमि का टुकड़ा जहां एक ओर दूसरे की उत्पादन इकाई को लाभ पहुंचाता है वहां दूसरी ओर ग्रामीण समाज में उसके सामाजिक स्तर को भी बढ़ाता है । बहुत से बन्धुआ मजदूरों के पास भूमि व गृह थे जो गिरवीं रखे गए थे । बन्धुआ मजदूरी प्रथा (उन्मूलन) अधिनियम की धारा-7 के कठोरता से कार्यान्वित करने पर ऐसी भूमि सम्पदा को, जो साधारण रूप से प्राप्त नहीं हो सकी है, पुनः प्राप्त किया जा सकता है । अन्य सभी भूमिहीन व्यक्तियों के मामलों में भूमि की निम्नलिखित तीन श्रेणियों के आवंटन पर विचार किया जा सकता है—(क) निश्चित मात्रा से अधिक भूमि (ख) सरकारी भूमि (ग) निजी भूमि । यदि जिला राजस्व अधिकारियों द्वारा निश्चित मात्रा में अधिक भूमि कानून को उचित रूप से कार्यान्वित किया जाए तो बन्धुआ मजदूरों की भूमि हीनता की समस्या को काफी हद तक दूर किया जा सकता है । भारत सरकार के श्रम मंत्रालय ने सभी राज्य सरकारों को पहले ही आदेश जारी किए हैं कि बन्धुआ मजदूरों के लिए बन्धता से मुक्त होने के उपरान्त शीघ्र ही भूमि आवंटन और आवास हेतु उनके यहां एक अलग कार्यक्रम होना चाहिए । इससे उनमें आत्मीयता की भावना जागृत होगी और पुनर्वासित किए गए मुक्त बन्धुआ मजदूरों की वास्तविक संख्या भी ज्ञात हो सकेगी ।

राजस्व, कृषि, सिंचाई, जंगलात और सरकारी विभागों के अधिकारियों के पूर्ण सहयोग से मुक्त बन्धुआ मजदूरों की भूमि सम्पदा के पूर्ण विकास हेतु जिला स्तर पर एक व्यापक और सम्पूर्ण कार्यक्रम तैयार किया जाना चाहिए । इस प्रकार की कोई योजना बनाते समय कलक्टर को सभी विभागों/एजेंसियों, वित्तीय संस्थानों, समन्वित/ग्रामीण विकास कार्यक्रम, राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम (समुदाय के आधार पर) अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जन-जातियों के विकास के लिए विशेष केन्द्रीय सहायता आदि साधन प्राप्त करने हेतु सक्षम होना चाहिए ।

इस बात पर भी जोर दिया गया है कि मुक्त बंधुआ मजदूरों को पुराने स्थान से उठाकर ऐसे स्थान पर पुनर्वासित किया जाना चाहिए जहां वे ग्रामीण जमींदारों और सूदखोरों की प्रभुसत्ता से दूर हों । राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम के अन्तर्गत सामूहिक ग्रामीण हाउसिंग परियोजना इस समस्या का समाधान हो सकती है । ऐसी परियोजना में राज्य सरकार भी कुछ आवासीय सहायता देती है । राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम के अन्तर्गत ब्लाक एजेन्सीज द्वारा इसको पूरा किया जाता है और मुक्त बन्धुआ मजदूर स्वयं श्रम कर इसमें योगदान करते हैं । ऐसा ज्ञात हुआ है कि ऐसी परियोजना आन्ध्र प्रदेश के कुछ जिलों में, उन जिलों के कलक्टरों के प्रयत्नों से निष्पादित की जा चुकी है ।

जिला ग्रामीण विकास एजेन्सी का अध्यक्ष होने के नाते जिला कलक्टर व्यक्तिगत आधार पर व्यापक ग्रामीण विकास परि-योजना के अन्तर्गत कुएं खुदवाने के लिए या जोड़ बांध/क्रास बान्ध का निर्माण कराने हेतु राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम या सिंचाई में विशेष कम्पोनेंट योजना और आदिवासी उपयोजना के अन्तर्गत विशेष केन्द्रीय सहायता प्रदान करवाने में सहायता करके मुक्त बन्धुआ मजदूरों की भूमि के लिए सिंचाई सुविधाएं उपलब्ध करवाने में काफी सहायता कर सकता है । ऐसी परियोजनाएं मुक्त बन्धुआ मजदूरों पर सीधा लाभकारी प्रभाव छोड़ेंगी ।

पशुपालन क्षेत्र भी उसके जीवन निर्वाह और उसकी आय बढ़ाने में बैकल्पिक साधनों के रूप में अच्छे अवसर प्रदान कर सकता है । यहां पर भी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम, व्यापक ग्रामीण विकास परियोजना, अनुसूचित जाति के लिए विशेष कम्पोनेन्ट योजना और आदि-वासी उप-योजना जैसे विभिन्न क्षेत्रों के बीच तालमेल बैठाने के अच्छे अवसर हैं और जिला कलक्टर ही केवल इस प्रकार के तालमेल को सफलतापूर्वक स्था-पित कर सकता है । पर यह देखा गया है कि मुक्त बंधुआ मजदूरों को दिए गए पशुओं की उचित रूप से देखभाल करने और पशु शेडों के निर्माण करने के लिए उचित मात्रा में साधनों का अभाव रहता है । कलक्टर एक गांव में सभी आवश्य-कताओं सहित सामुदायिक शेडों का निर्माण कर पहल कर सकता है । प्रत्येक शैड एक व्यक्ति को पशु/पशुओं को रखने के लिए आवंटित कर दिया जाए । ऐसी योजना राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम के अंतर्गत अच्छे ढंग से आरम्भ की जा सकती है । इसी प्रकार राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम और अनुसूचित जाति/अनुसूचित जन-जाति के लिए विशेष कम्पोनेंट योजना के अंतर्गत विशेष केन्द्रीय सहायता के अंतर्गत मुक्त बन्धुआ मजदूरों के लिए सामुदायिक आधार पर मुर्गी-पालन शेडों का निर्माण किया जा सकता है । राज्य सरकार के पशु-पालन विभाग

द्वारा उपलब्ध कराए जाने वाले पक्षियों के पालन हेतु प्रत्येक शेड एक व्यक्ति को आबंटित किया जा सकता है। ऐसे स्थानों पर जहां चारा उगाने के लिए संतोषजनक व्यवस्था न हो, कलक्टर बंधुआ मजदूरों के चारे की मांग को पूरा करने के लिए लोगों को चारा उगाने हेतु प्रोत्साहित कर पहल कर सकता है।

कलक्टर जो अपने जिले के सभी विभागों की गतिविधियों में समन्वय स्थापित करने के लिए उत्तरदायी है, को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि वे मुक्त-बंधुआ मजदूर तथा उसके पारिवारिक सदस्यों को नौकरी दिलवाने के लिए अपनी गतिविधियों में तेजी लाए। सार्वजनिक निर्माण विभाग, सिंचाई संरक्षण, जंगलात आदि विभागों के विकासशील कार्यक्रमों की योजना बनाते और निष्पादित करते समय निम्न बातों पर ध्यान दिया जाना चाहिए :—(1) एक माह में अधिक से अधिक दिनों तक दैनिक रोजगार देने की व्यवस्था हो, (2) न्यूनतम सांविधिक वेतन और जहां तक संभव हो उसी या उसी प्रकार के कार्य के लिए स्त्री व पुरुष मजदूरों को बराबर वेतन की अदायगी सुनिश्चित करना (3) और यह देखना कि इस प्रकार की परियोजनाएं मुक्त बन्धुआ मजदूर और उसके पारिवारिक सदस्यों को सीधा लाभ पहुंचाएं।

ऋण सहायता और बाजार में अच्छी कीमतों पर उनके उत्पादनों की शीघ्र बिक्री हेतु सम्बन्ध स्थापित करना बन्धुआ मजदूरों के आर्थिक पुनर्वास के लिए दो अन्य महत्त्वपूर्ण उपाय हैं। ऋण बंधुता युग की घातक प्रथा ऋण अब अपने अंतिम चरण में है। अतः सहकारी समितियों और ग्रामीण बैंकों से ऋण सहायता दिलवाकर कलक्टर को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि वे बन्धुआ मजदूरों की स्वतंत्रता पर सूदखोरों की अनैतिक (दुष्ट) पकड़ को तभी तोड़ा जा सकता है जब वे अपनी दैनिक आवश्यकताओं से लेकर विकास आवश्यकताओं के विभिन्न प्रयोजनों को पूरा करने के लिए प्राप्त ऋणों का उपयोग कर सकें।

मुक्त बन्धुआ मजदूरों द्वारा उत्पादित वस्तुओं को कम से कम अवधि तक या बाजार में अच्छे दाम मिलने तक रोकने में असमर्थता के कारण बाजार के साथ सम्बन्ध रखना न्यायसंगत प्रतीत होता है। देश में बसे बहुत से आदिवासियों के बारे में यह सत्य है कि बाजार के साथ उचित सम्बन्ध न होने के कारण वे अपनी उत्पादक वस्तुओं को अत्यधिक सस्ते दामों पर उन मध्यस्थों को बेच देते हैं, जो फसल काटने के समय उन्हें अग्रिम देते हैं, ताकि उनको उत्पादित वस्तु न्यूनतम दामों पर प्राप्त हो सके। यदि सहकारी विपणन निकायों को मध्यस्थों का स्थान लेने के लिए विकसित एवं मजबूत बनाया जाए तो इस प्रकार की प्रथा को रोका तथा समाप्त किया जा सकता है।

जिला मजिस्ट्रेट को मुक्त बन्धुआ मजदूरों के आर्थिक पुनर्वास हेतु वन विभाग और वन निगमों का सहयोग लेते हुए एक और महत्त्वपूर्ण भूमिका निभानी है। अनुसूचित जनजाति के बन्धुआ मजदूर अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए वर्षों से वन में उपलब्ध होने वाली छोटी-छोटी वस्तुओं पर निर्भर हैं। वे पर्याप्त संकलन के बावजूद भी पूरी आय से वंचित रह जाते हैं क्योंकि वन उत्पादित वस्तुओं का बड़ा भाग कार्य न करने वाले मध्यस्थों के पास चला जाता है। वन विभाग ऐसे लोगों की दो तरह से सहायता कर सकता है :—

(1) टोकरी, झाड़ू, बनाने के लिए शिल्पकारों को कच्चा माल देकर तथा लकड़ी की अटेरन रियायती दामों पर उपलब्ध कराकर वन विभाग उनकी सहायता कर सकता है (2) वन में उपलब्ध होने वाले कच्चे माल को बाहर न भेजकर उस स्थान में ही वस्तुएं उत्पादित की जाएं जिससे क्षेत्र के आदिवासियों को पर्याप्त संख्या में रोजगार के अवसर उपलब्ध होंगे और आदिवासी क्षेत्रों का आर्थिक विकास संभव हो सकेगा।

मुक्त बन्धुआ मजदूरों के शारीरिक और आर्थिक पुनर्वास के लिए उपर्युक्त कुछ उपाय हैं जो काफी तो हैं परन्तु सम्पूर्ण नहीं हैं। अन्य और भी उपाय जैसे पुराने कारीगरों की दक्षता को बढ़ाने के लिए और नए कारीगरों में दक्षता उत्पन्न करने के लिए प्रशिक्षण दिया जा सकता है। पारम्परिक कला और शिल्प की उन्नति, स्वास्थ्य, चिकित्सा सुविधा, पीने के पानी की सप्लाई, सफाई, आवश्यक वस्तुओं की सप्लाई, मुक्त बन्धुआ मजदूरों के बच्चों की शिक्षा और इसी प्रकार से और भी सुविधाएं वास्तविक लागत के आधार पर मुआवजे के रूप में दी जा सकती हैं। इन सब कार्यक्रमों को बनाते समय और क्रियान्वित करते समय दो बातों का स्पष्ट रूप से ध्यान रखा जाना चाहिए :—

(1) वर्षों से विश्व में प्रभुसत्ता और दासता का शासन रहा है। अतः मुक्त बन्धुआ मजदूरों का संचालन करते हुए अत्यधिक ध्यान देने की आवश्यकता है। (2) किसी योजना को उन पर थोपना नहीं चाहिए। किसी योजना को अंतिम रूप देने और कार्यान्वित करने से पहले उनकी कुशलता, प्रवीणता, उपयुक्तता तथा कुल मांग, जिसकी मानव को आवश्यकता है, का आकलन कर लेना चाहिए। इन सब योजनाओं का आधार मानवतावादी होना चाहिए आवश्यकता तथा विकास पर केन्द्रित विभिन्न योजनाओं में उचित समन्वय और एकरूपता लाने के लिए जिला प्रशासन क्रम में जिला मजिस्ट्रेट की मुख्य भमिका है। यदि पद्-दलितों के उत्थान के लिए संकल्प लें या बचनबद्ध हों तो मुक्त बन्धुआ मजदूरों की पुनर्वास समस्या कितनी ही जटिल तथा चुनौतीपूर्ण क्यों न हो, उसका समाधान किया जा सकता है जिससे न्याय और सामाजिक एकरूपता को बढ़ावा मिलेगा। □

.निदेशक (श्रम कल्याण), श्रम मंत्रालय, भारत सरकार।

मरुस्थल का उत्सव : एक अनोखा आकर्षण

जैसलमेर नगर थार से चारों ओर से घिरे क्षेत्र में स्थित है जहां रेत की लहरें हवा में उछलती और शोर मचाती हैं। जैसलमेर अपने पीले रेतीले पत्थरों से बने महलों के कारण आज भी जीवंत मरुस्थल का एक शानदार प्रतीक बना हुआ है। यहां जनवरी के अंत में हर साल रेगिस्तान का उत्सव मनाया जाता है जो अपने ढंग का अनोखा उत्सव है। इसमें आमोद-प्रमोद, संगीत और नृत्य, खेलकूद रेगिस्तान की परम्पराओं के अनुसार आयोजित होते हैं। यहां के निवासियों और पर्यटकों के लिए यह एक अनोखा आकर्षण माना जाता है।

उत्सव में आने वालों के लिए तम्बू लगाए जाते हैं। ऊंटों को सजाया जाता है। ऊंटों के खेल, ऊंटों की दौड़ और कलाबाजियां और खास कर ऊंट पोलो दर्शकों को बहुत ही भाते हैं। जगमगाती जैसलमेर की पृष्ठभूमि लिए जब 100 संगीतकारों का समूह लोक संगीत सुनाता है तो देखते ही बनता है। पश्चिमी राजस्थान का परम्परागत लोकसंगीत, थार का रात्रि मरुस्थल संगीत, लोकनृत्य, ऊंटों के ठेलों पर लोकगीत गाती टोलियां, प्रकाश और ध्वनि कार्यक्रम इस मरुस्थल उत्सव के दूसरे मनोहारी आयोजन होते हैं। इनमें मरुस्थल के सामाजिक जीवन की झांकी मिलती है।

रेतीले टीलों पर धूप सेकने का कभी ना भूलने वाला अनुभव सारे देश के सैकड़ों पर्यटकों को यहां खींच के ले आता है।

इस उत्सव में दूसरा आकर्षण सिद्ध हस्त शिल्पियों की कुशल कारीगरी के कई नमूने हैं जो हस्तशिल्प बाजार में देखने को मिलते हैं। इनमें कढ़ाई किए जूते, कपड़े पर शीशे की कढ़ाई तथा पत्थरों और लड़की पर नक्काशी प्रमुख हैं।

इस उत्सव को अब तीन भागों में बांट दिया गया है और यह बीकानेर और जोधपुर में भी मनाया जाता है। जैसलमेर में यह उत्सव तीन दिन तथा दूसरे दो शहरों में दो दिन मनाया जाता है।

यह सुन्दर उत्सव मरुस्थल की समृद्ध संस्कृति को दर्शाता है और उन दर्शकों के दिलों में कभी ना भूलने वाली याद बन कर रह जाता है। □

नये भारत का उदय

हाल ही में आर्थिक विकास की तीव्र प्रगति के साथ-साथ नए 20 सूत्री कार्यक्रम में इस बात पर जोर दिया गया है कि विकास का अधिकतम लाभ जहां तक हो सके सभी वर्गों को मिले, विशेषकर उन 80 प्रतिशत लोगों को इसके लाभ मिलें जो गांवों में रहते हैं :

देखिए, पिछले लगभग दो वर्षों में कितनी प्रगति हुई है। इसके लिए निम्नलिखित कदम उठाए गए हैं :

★ यह देखना कि कृषि मजदूरों को कम से कम कितनी मजदूरी दी जाती है और उनके लिए मजदूरी की न्यूनतम निर्धारित दरें असरदार तरीके से लागू कराना।

★ बंधुआ मजदूरों के पुनर्वास की व्यवस्था।

★ अनुसूचित जातियों और जनजातियों के विकास कार्यक्रमों में तेजी लाना।

★ पानी की कमी वाले गांवों में पीने के पानी की व्यवस्था करना।

★ जिन परिवारों के पास अपने मकान बनाने के लिए जमीन नहीं है उन्हें इसके लिए जमीन देना और उनके लिए मकान बनाने में सहायता के कार्यक्रमों का विस्तार करना।

राष्ट्रीय जीवन को विकसित करने की हमारी सब कोशिशें हर प्रकार से सामाजिक न्याय और देश के विभिन्न वर्गों में सद्भाव रखने की हमारी क्षमता पर निर्भर होंगी।

सत्यमेव जयते-श्रम एव जयते

davp 82/136

परिवर्तन की ओर अग्रसर हमारे आदिवासी

जगमोहन लाल माथुर

प्रस्तुत लेख पश्चिमी मध्य प्रदेश में झाबुआ, धार और रतलाम जिले के आदिवासी क्षेत्रों की यात्रा के आधार पर लिखा गया है। इसमें बताया गया है कि किस प्रकार परम्पराओं से जुड़े आदिवासियों के जीवन में विभिन्न विकास कार्यक्रमों के माध्यम से धीरे-धीरे नई चेतना आ रही है और वे निरन्तर आगे बढ़ रहे हैं।

पश्चिमी मध्य प्रदेश में जब मैं झाबुआ से कोई 25 कि० मी० दूर कल्याणपुर गांव पहुंचा तो उस दिन साप्ताहिक हाट की खासी चहल-पहल थी। सहकारी समिति के कार्यालय में भी कोई एक दर्जन आदिवासी किसान बढ़िया बीज और रसायनिक खाद लेने के वास्ते अपनी बारी की प्रतीक्षा कर रहे थे। उन्हीं में से एक था--मान सिंह, चांदी की बालियां पहने सिर पर साफा लपेटे था। काकणकुआं गांव का यह किसान संकर-ज्वार के चमत्कार का कायल है। वह खुद बताता है कि जहां देशी ज्वार से वह केवल 2 क्विंटल उगा पाता था वहां संकर ज्वार से बिना खाद भी 5 क्विंटल पैदा करता है। पाटलघाटी का हुरजी किसान मक्का में यूरिया का इस्तेमाल करके ज्यादा फसल प्राप्त कर रहा है। हीरापुर गांव का रतना एन० पी० के० खाद को अच्छी मानता है। इन सबसे बातचीत से यह निष्कर्ष निकलता है कि झाबुआ जिले के किसानों में कृषि की आधुनिक तकनीक, उन्नत बीज और रासायनिक खाद के प्रति पर्याप्त जागरूकता है।

मध्य प्रदेश का यह आदिवासी प्रधान जिला-झाबुआ नीचे टीलों वाली लाल पथरीली जमीन के 6781 वर्गमील क्षेत्रफल में फैला है और इसकी आबादी करीब 8 लाख है। यहां की मुख्य जनजातियां भील, भीलाला और पटेलिया हैं। भूतपूर्व रजवाड़े के ये निवासी पुरानी परम्पराओं में बंधे हैं पर नए-नए विचारों से विमुख नहीं हैं। जिले की 8 लाख जनसंख्या के लिए कोई एक लाख 60 हजार टन अनाज की जरूरत आंकी गई है। आजकल यहां एक लाख 30 हजार टन अनाज पैदा होता है। इस प्रकार कोई 30 हजार टन की कमी है। जिले के कृषि अधिकारियों का विश्वास है कि संकर ज्वार और अन्य अनाज की उन्नत किस्मों से वे शीघ्र ही न केवल इस कमी को दूर कर देंगे बल्कि इस जिले में अन्यत्र भेजने के लिए अतिरिक्त अनाज भी पैदा हो सकेगा। 1977-78 में यहां केवल 22,000 हे० भूमि में ज्वार उगाई जाती थी जबकि 1981-82 में यह रकबा डेढ़ गुना बढ़ कर 33,000 हेक्टेयर हो गया। इस बार केवल संकर ज्वार 10,000 हेक्टेयर में बोई गयी है। संकर-ज्वार का औसत उत्पादन 15-20 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है। संकर मक्का भी बोई जाने लगी है। हाल के वर्षों में संकर बाजरे की बुवाई भी शुरू की गई है। मक्का की बुवाई का क्षेत्र तो अधिक नहीं बढ़ा लेकिन उत्पादन 36 हजार टन से बढ़कर 42 हजार टन हो गया है। पिछले सात वर्षों से अब यहां गेहूं भी बोया जाने लगा है। 1980-81 में आलू की पैदावार शुरू की गई थी पर वह सफल नहीं हो सकी क्योंकि यहां ठंडे गोदामों की कमी है। एक और परिवर्तन हाल में यह नजर आया है कि झाबुआ की सब्जी मंडी में जहां पहले बाहर के कुंजड़े ही दिखाई देते थे वहां अब आदिवासी सब्जी विक्रेताओं की संख्या बढ़ गई है।

भूमि का संरक्षण

उन्नत कृषि की विधियों के साथ-साथ इस जिले में भूमि संरक्षण के लिए भी जोरदार उपाय किए गए हैं। यहां भूमि के कटाव से बहुत नुकसान हो चुका है। पिछले 8 वर्षों में झाबुआ जिले के ऊंचे-नीचे टीलों को ठीक करके कोई 45 हजार हेक्टेयर अतिरिक्त भूमि कृषि योग्य बनाई जा चुकी है। हर साल करीब 5000 हे० भूमि को इसी तरह के उपायों से ठीक करके सीढ़ीनुमा खेतों में परिवर्तित किया जा रहा है।

झाबुआ जैसे पिछड़े जिले में सिंचाई का अत्यंत महत्व है। पांचवीं योजना के प्रारम्भ में यहां केवल 8270 हे० भूमि में सिंचाई की सुविधाएं प्राप्त थीं। मार्च, 1982 तक 17,458 हे० भूमि में सिंचाई सुविधाएं उपलब्ध हो गई हैं। पिछले कुछ वर्षों में एक प्रतिशत प्रतिवर्ष की गति से सिंचाई सुविधाएं बढ़ाई गई हैं। यहां की परिस्थितियों में तालाबों और छोटे बांधों का विशेष महत्व है। गुलाबपुरा, बोरखेरारी और मोदसागर जलाशयों का हाल में निर्माण हुआ है। मोदसागर में कुल मिलाकर 73.3 लाख घनमीटर जल संचित हो सकेगा जिससे 1647 हे० भूमि में सिंचाई होगी और चार गांव लाभान्वित होंगे। मोदसागर योजना के निर्माण की लागत लगभग 5700 रुपये प्रति हेक्टेयर आंकी गयी है। एक खास बात यह है कि यहां सिंचाई सुविधाएं उपलब्ध करने का प्रति हेक्टेयर

खर्चा भी अधिक है। जिले में दो वर्षों में कोई 35 छोटी बड़ी योजनाएं पूरी हुई हैं जिनसे 4100 हे० अतिरिक्त भूमि की सिंचाई सुविधाएं प्राप्त हुई हैं और अब तक कुल मिलाकर निजी और सरकारी दोनों साधनों से कोई 30,950 हे० क्षेत्र में सिंचाई सुविधाएं उपलब्ध हैं जो कुल काश्त भूमि का लगभग 9 प्रतिशत है।

झाबुआ की भौगोलिक स्थिति को देखते हुए यह उचित ही लगता है कि एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम के तहत किसानों को कुंए बनाने के लिए अधिक ऋण दिया गया है ताकि वर्षा पर निर्भरता को कम किया जा सके। आलीराजपुर अंचल के कुण्डा गांव में डूंगर सिंह तथा केमला ने बैंक आफ बड़ौदा से 8–8 हजार रु० का ऋण लेकर कुएं बनवाए और अब अपने खेतों में गेहूं व चना भी उगाने लगे हैं। ये दोनों किसान शीघ्र ही पम्पसेट भी लगाने वाले हैं। खडखड़िया गांव के छगन ने बैंक से ऋण लेकर बैल खरीदे हैं और अपनी खेती बढ़ा ली है। इसी गांव की एक बहादुर महिला शूरबाई है जिसने तीरंदाजी में पुरस्कार जीता है, पर साहूकार से लिए गए पुराने ऋण के आगे बेबस है। आदिवासियों को ऋण लेने की विभिन्न सुविधाओं के बावजूद शूरबाई तथा अनेक गरीब किसान ऋण मुक्त नहीं हो पाए हैं।

दो करोड़ रुपये के ऋण

पर फिर भी एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम के अंतर्गत काफी लोगों को सुविधाएं मिली हैं। 1981–82 में इस कार्यक्रम के तहत कुल मिलाकर 2 करोड़ 13 लाख रु० के ऋण दिए गए हैं जिनका लाभ 3500 परिवारों को पहुंचा है। उन्हें कोई 70 लाख 50 हजार रु० अनुदान के रूप में मिले हैं।

झाबुआ-धार ग्रामीण बैंक ने भी गरीबों को ऋण देकर उन्हें अपने पैरों पर खड़ा करने में योग दिया है। इसकी कल्याणपुर शाखा ने जून, 1981 में अपनी स्थापना से लेकर अब तक करीब 300 व्यक्तियों को कोई 28 लाख 20 हजार रु० का ऋण दिया है। अब आदिवासी अपनी दुकानें चलाने लगे हैं। सर्व सिंह ने बैंक से 2500 रु० के ऋण से परचून की दुकान खोलकर अपनी 20 रु० रोज की रोजी पक्की कर ली है। वीर सिंह भील ने 7000 रु० के ऋण से पम्पसेट खरीद कर अपनी उपज दुगुनी बढ़ा ली है। इस बैंक द्वारा ऋण देने के क्षेत्र में कई दुधारू भैंस भी आ गई हैं। झाबुआ में इस वर्ष अप्रैल से दूध प्रशीतन केन्द्र खुल जाने से गरीब किसानों को दूध बेचकर पहले से अधिक आमदनी होने लगी है। इसी प्रकार आलीराजपुर अंचल में नानपुरा में बैंक आफ बड़ौदा की मदद से न केवल हरिजनों ने झाडू बनाकर लाभ कमाया है बल्कि कुम्हारों की जिन्दगी का चक्र भी घूम गया है। कालू कुम्हार अब साधारण चाक पर नहीं, बिजली के चाक पर 60 से 70 बर्तन बना लेता है जबकि पहले इससे आधे ही बनते थे। कुछ निठल्ले आदिवासी युवकों ने मछलीपालन का धंधा भी बैंक की सहायता से शुरू किया है।

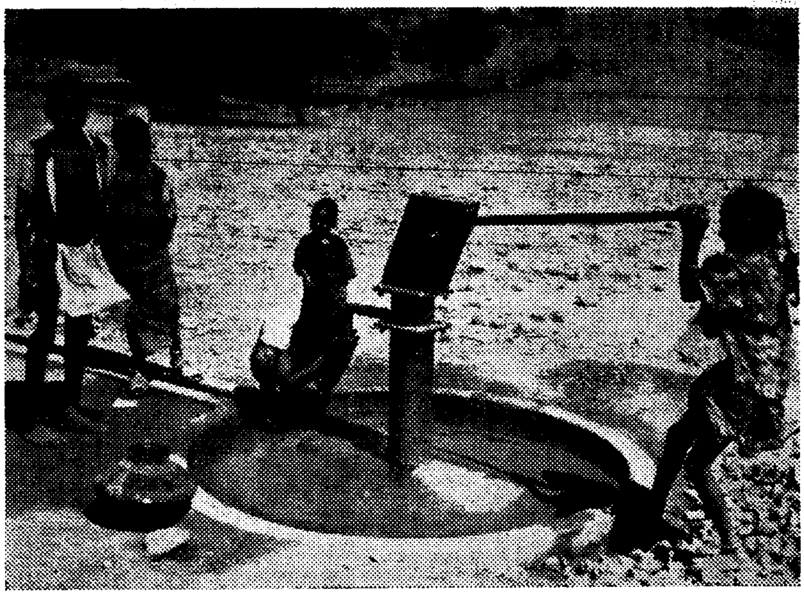

आदिवासियों के लिए पेयजल की व्यवस्था

1500 हेंडपंप लगाए गए

झाबुआ जिले में एक अन्य क्षेत्र में उल्लेखनीय काम हुआ है वह है—पेयजल की व्यवस्था। 1978–79 तक इस जिले के केवल 550 गांवों में हैण्डपम्प लगाए गए थे जबकि इसके बाद के 3 वर्षों में इतनी तेजी से काम हुआ है कि और 450 गांवों में हैण्डपम्प लगाए गए हैं। जून, 1982 तक इस जिले के कोई 100 गांवों में 1500 हैण्डपम्प लगाए जा चुके हैं। केन्द्रीय सरकार की सहायता से 50 गांवों के लिए पेयजल योजना मंजूर की गयी थी। इनमें से 22 गांवों के लिए हैण्डपम्प लगाने का कार्यक्रम था, 21 गांवों में यह कार्यक्रम पूरा किया जा चुका है।

इस जिले में शिक्षण संस्थाओं का भी खास विस्तार हुआ है। 1975–76 में कोई 787 प्राथमिक शालाएं थीं जिनकी संख्या 1981–82 में 1144 हो गई हैं। यहां पहले 102 माध्यमिक शालाएं थीं, जिनकी संख्या में 82 की और वृद्धि हुई है और उच्चतर माध्यमिक विद्यालय 30 से बढ़कर 35 हो गए हैं। आदिवासी अब अधिकाधिक बच्चों को स्कूल भेजने लगे हैं। यह इस बात से पता चलता है कि जहां 5 साल पहले केवल 26,600 बच्चे प्राथमिक शालाओं में पढ़ते थे, उनकी संख्या में 10,000 की वृद्धि होकर 36,000 हो गई है। पिछले 5 वर्षों में माध्यमिक शालाओं में पढ़ने वाले छात्रों की संख्या में 2000 और उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में पढ़ने वालों की संख्या में 300 की वृद्धि हुई है। आदिवासी लड़के-लड़कियों को शिक्षा की ओर आकृष्ट करने में छात्रावासों का भी काफी योगदान है। 1975–76 में यहां केवल 85 छात्रावास थे जबकि अब 106 छात्रावास हो गए हैं। इन छात्रावासों से विद्यार्थियों को कितना लाभ हो रहा है इसका उदाहरण हमें झाबुआ से कोई 20 कि० मी० दूर राणापुर गांव में स्थित छात्रावास में मिला। राणापुर से 15 कि० मी० दूर सुई गांव का छात्र भीम सिंह बिना छात्रावास के 11वीं तक पढ़ाई

पूरी करने की बात सपने में भी नहीं सोचता था। और आज वह होस्टल में रहकर पढ़ाई कर रहा है। कन्या छात्रावासों व आश्रमों के खुलने से भी लड़कियों में पढ़ाई काफी बढ़ी है।

शिक्षण संस्थाओं के साथ प्रशिक्षण सुविधाओं का भी विकास हुआ है। आदिवासी कल्याण विभाग झाबुआ में प्रशिक्षण सह-उत्पादन केन्द्र चला रहा है जिसमें बढ़ईगिरी, सिलाई, खिलौने बनाने, लोहारगिरी, हथकरघा, कढ़ाई-बुनाई, राजगिरी और ब्रुश बनाने जैसे 12 व्यवसायों का प्रशिक्षण दिया जाता है हर व्यवसाय में इस समय 12–12 विद्यार्थियों के लिए स्थान हैं और एक वर्ष के प्रशिक्षण के दौरान उन्हें 100 रु० का वजीफा भी मिलता है। इस केन्द्र में प्रशिक्षणार्थी 100 कि० मी० दूर से आए हैं। इस केन्द्र से अब तक प्रशिक्षण प्राप्त 200 युवक-युवतियों में से अधिकांश ने गांवों में व्यवसाय शुरू कर दिए हैं। ऐसे कई प्रशिक्षार्थियों को मैंने झाबुआ के पास अपने व्यवसाय चलाते हुए देखा। मोजीबाड़ा में एक प्रशिक्षित युवक ने लोहे के पलंग बनाने का काम शुरू कर दिया है। ये पलंग प्रशिक्षण केन्द्र के माध्यम से अस्पतालों और होस्टलों को सप्लाई किए जाते हैं। गुड़िया बनाने के केन्द्र में आदिवासी लड़कियां सुन्दर-सुन्दर गुड़ियां बनाती हैं जिन्हें दूर-दूर भेजा जा रहा है।

32 लाख पौधे निःशुल्क

इस उजाड़ इलाके में वृक्षों का कितना महत्व है यह इस बात से विदित होता है कि 1982 में पेड़ लगाने के लिए 2200 हे० क्षेत्र को तैयार किया गया है। इसके लिए विभिन्न नर्सरियों में पौधे तैयार कर लिए गए हैं। 27 लाख 3 हजार पौधे इस वर्षा ऋतु में लगाने का कार्यक्रम है। इसके अलावा वन विभाग की ओर से आदिवासियों को बांस, सागौन, आम, जामफल आदि के 32 लाख पौधे मुफ्त बांटे जाएंगे। कट्ठीवाड़ा, झाबुआ के उजाड़ और वीरान वातावरण से बिल्कुल भिन्न है जहां बहुत से सुन्दर वन आज भी फल-फूल रहे हैं। इनको काटने से बचाने के लिए प्रयास किए जाते हैं। यहां कुछ काजू के पेड़ लगाने का भी प्रयोग किया गया है। पर बांस के पेड़ लगाना अधिक लाभप्रद है। वन विभाग ने पंचायतों की मांग पर कई स्थानों पर पंचवन लगाए हैं जिनकी आमदनी से पंचायतें लाभ उठा सकती हैं।

आदिवासियों को उचित दाम पर आम जरूरत की चीजों को उपलब्ध कराने के लिए जिले में 34 वृहद सहकारी समितियां काम कर रही हैं। यह एक अच्छी बात है कि सार्वजनिक वितरण की पूरी व्यवस्था इन्हीं समितियों के हाथ में है। इनसे आदिवासी मक्का, शक्कर, तेल, माचिस, नमक, कपड़ा आदि वाजिब दामों में खरीद सकते हैं। पर मैंने इन संस्थाओं को कहीं भी आदिवासियों से वन उपज आदि खरीदते हुए नहीं देखा। आलीराजपुर और कुछ अन्य स्थानों पर कंट्रोल भाव पर मिलने वाली सफेद साड़ियों को, जिन्हें यहां के रहने वाले आदिवासी पसन्द नहीं करते, रंगबिरंगी ओढ़नियों में बदलने की अभिनव योजना शुरू की गई है। इससे स्थानीय हुनर का उपयोग होगा और आदिवासी स्त्रियों को ओढ़नियां सस्ती मिलेंगी।

औद्योगिकरण की दिशा में अभी कोई खास प्रगति नहीं हुई है। मेघनगर को आस-पास के इलाके को केन्द्रीय सरकार ने केन्द्रीय संयंत्र (न्यूक्लीयस प्लांट) के लिए चुना है। राक फास्फेट पर आधारित एक कारखाना भी निजी क्षेत्र में लगाया जा रहा है। लघु उद्योग के रूप में कल्याणपुर क्षेत्र में एक अच्छा काम यह हुआ है कि वहां मिट्टी से टाइले बनाने के कोई 22 यूनिटों को झाबुआ-धार ग्रामीण बैंक ने ऋण दिए हैं। मामूली पूंजी से लगने वाले इन उद्योगों में जो टाइलें बनने लगी हैं वे गुजरात और मध्य प्रदेश के दूर-दूर के स्थानों पर बिक्री के लिए जाती हैं।

रतलाम

लगभग 4860 कि० मी० क्षेत्र में फैले रतलाम जिले की करीब 8 लाख की आबादी में अनुसूचित जनजातियों की संख्या 21 प्रतिशत है। यहां की प्रमुख जनजातियों में भील, मिलाल, गौण्ड हैं। सैलाना व बाजना तहसीलों में काफी आदिवासी हैं। सैलाना विकास खंड की यात्रा के दौरान मुझे सबसे ज्यादा अच्छा काम यह लगा कि आदिवासियों के लिए कुछ कुटीर बनाए गए हैं जिनमें से प्रत्येक पर 1500 रुपये खर्च आया है। इस तरह के 20 कुटीर हाल में हारसौल गांव में बने हैं। 96 और बनाए जा रहे हैं। इनमें रहने वाले आदिवासी यह महसूस करते हैं कि इनके बिना उनकी हालत बंजारों की तरह ही थी। अब उनके अपने घर हो गए हैं। दूसरा अच्छा काम बुनकर सहकारी समिति कर रही है जो तौलिए और दरी तथा टाट-पट्टी बुनने का प्रशिक्षण देती है। इसमें 12-12 प्रशिक्षणार्थियों को 8 महीने का प्रशिक्षण दिया जाता है। भीलों की खेड़ी में रहने वाले एक आदिवासी तुलसी का कहना है कि वह पहले खेत में मजदूरी करके केवल 5–6 रु० मजदूरी पाता था

आदिवासी लड़कियों के लिए गुड़िया बनाने का प्रशिक्षण केन्द्र।

वहां अब वह तौलिए बुनकर ही हर रोज कोई 8–9 रु० आसानी से कमा लेता है। दरी बुनने वाले को 10–12 रु० रोज की आमदनी हो जाती है। सैलाना विकास खंड में सभी पंचायत मुख्यालय सड़क से जुड़ गए हैं। सरवन गांव के छात्रावासों में रहने वाले आदिवासी छात्र व छात्राएं अब न केवल अपनी सामान्य पढ़ाई जारी रखे हुए हैं बल्कि उनमें से पिछले साल 3–4 छात्रों ने प्रथम श्रेणी में मिडिल परीक्षा पास की। सरवन गांव की आदिवासी भील महिला सीता सिलाई में इतना निपुण हो गई है कि ट्राइसेम के अंतर्गत अन्य लड़कियों को सिलाई का प्रशिक्षण भी देती है। रतलाम जिले में कुल मिलाकर 850 प्राथमिक शालाएं, 187 माध्यमिक शालाएं व 33 उच्चतर माध्यमिक शालाएं चल रही थीं। प्राथमिक शालाओं में कोई 9700 आदिवासी बच्चे व माध्यमिक शालाओं में 3600 आदिवासी बच्चे, उच्चतर माध्यमिक शालाओं में 380 आदिवासी छात्र पढ़ रहे हैं।

धार

राजा भोज के नाम से जुड़े धार जिले का क्षेत्रफल 8100 वर्ग कि० मी० है और जनसंख्या साढ़े आठ लाख। इस जिले में अनुसूचित जातियों की आबादी कुल जनसंख्या का 53 प्रतिशत है। इस जिले में आदिवासियों के विकास के लिए धार, कुंक्षी और बदनवार परियोजनाएं चल रही हैं जिनके माध्यम से करीब साढ़े चार लाख आदिवासियों को लाभ पहुंच रहा है। ऐतिहासिक नगरी मांडव में आदिवासियों के लिए एक कन्या आश्रम चलाया जा रहा ह। इसमें शिक्षिका ऐसी आदिवासी लड़की है जिसने खुद आदिवासी छात्रावास में रहकर शिक्षा प्राप्त की है और वह समझती है कि उस वर्ग की बालिकाएं कैसी पृष्ठभूमि से आती हैं और उनका मन पढ़ाई में लगाने के लिए क्या-क्या करना जरूरी है। 1981–82 में राज्य छात्रवृत्ति के अंतर्गत करीब 4,000 आदिवासी छात्रों को 11 लाख 24 हजार रु० की छात्रवृत्तियां दी गई हैं और मट्रिक के बाद की छात्रवृत्ति की योजना से 172 आदिवासी छात्रों को एक लाख 33 हजार रु० वितरित किए गए हैं। धार के नालछा विकास खंड में मार्च, 1982 तक 521 आदिवासियों को करीब 28 लाख रु० का ऋण और 8 लाख 35 हजार रु० का अनुदान वितरित किया गया है। इनमें ज्यादातर लघु कृषक और भूमिहीन मजदूर शामिल हैं। कई आदिवासी अपना रोजगार स्थापित करने में सफल हुए हैं।

इस प्रकार देश के अन्य भागों की तरह पश्चिमी मध्य प्रदेश में भी परिवर्तन चक्र घूम रहा है। लगभग एक दशक पहले जो आदिवासी सरकारी अधिकारियों को देखकर गांव में भाग जाते थे और जीपों की आवाज सुनकर झाड़ियों के पीछे छिप जाते थे, वे आज अपनी समस्याओं के बारे में अधिकारियों से खुलकर बात करते हैं और जरूरत पड़ने पर जिले के सर्वोच्च अधिकारी कलक्टर के पास जाने से भी नहीं हिचकते। बसों में पैसे देने के बाद अगर कंडक्टर टिकट नहीं देता तो वे चुप नहीं बैठते।

परम्पराओं से जुड़े रहने के बावजूद वे नए विचार ग्रहण करने लगे हैं, अपने बच्चों को शिक्षा देने लगे हैं, कृषि व सिंचाई के लिए तरीके अपनाने लगे हैं, अपनी उपज का उचित मूल्य पाने के लिए सजग हैं तथा प्रशिक्षण प्राप्त कर अपना जीवन संवारने को उत्सुक हैं। झाबुआ, रतलाम या धार के आदिवासी अंचल में भले ही अभी खुशहाली न आई हो पर रहन-सहन में सुधार अवश्य दिखाई देने लगा है और लोगों में आत्मविश्वास बढ़ रहा है। □

मेरा गांव

मुस्कुराता हुआ
अभ्यागत के स्वागत को
आतुर है,
आत्मीयता उड़ेल देने को व्याकुल है
पवित्रता की मूर्ति
देश का प्राण
शहर का आकर्षण
भारत की शान—
मेरा गांव
जहां की मिट्टी की सोंधी गंध
मेरे रग-रग में बह रही है।
टेढ़ी-मेढ़ी—
पगडण्डियों का लम्बा सिलसिला
खत्म ही नहीं होता।
ग्रामीण बालाएं
पनघट पर
भोगती हैं जीवन का आनन्द
उत्साह में डूबी हुई।
चरवाहे
चरागाहों के बादशाह हैं
अपनी पशु प्रजा के।
प्रातः
सूर्य की रक्तिम आभा
पक्षियों का कलरव
नवीन चेतना
जीवन का उल्लास
मेरा गांव।
जहां
चारों ओर बिखरे हैं
तरह-तरह के वृक्षों के बाग
हरियाली का साम्राज्य।
खेतों में काम करने वाले।
कृषक
धरती की छाती को
चीर कर
अन्न उपजाते हैं
पेट भरते हैं देश का
मेरे गांव के लोग।
जहां—
स्नेह अपनत्व का राज्य है
न कोई हेय है
न कोई त्याज्य है
मेरा गांव
अपना है। आपका है। सबका है।
देश में गांव। गांव में देश
मेरा गांव।

रामजी पाण्डेय,
224, पांचवीं गली,
निशात गंज, लखनऊ
(उ० प्र०)

बंधुआ मजदूरों का पुनर्वास

आलोक सिंह

बंधुआ मजदूरों की प्रथा गरीबी और बेरोजगारी से जुड़ी हुई है। वैसे इसे कानून द्वारा समाप्त कर दिया गया है परन्तु इसके चंगुल में फंसे लोगों को इतना भी पता नहीं कि उनकी जंजीरें टूट चुकी हैं। सरकार इस पाशविक प्रथा के उन्मूलन के लिए कटिबद्ध है और उन बन्धुआ मजदूरों को, जो अभी भी इसके बन्धन में जकड़े हुए हैं, मुक्त कराने के लिए प्रयत्नशील है और जो मुक्त हो चुके हैं उनके पुनर्वास की व्यवस्था की जा रही है। यद्यपि अनेक राज्यों में यह प्रथा पूर्णतः समाप्त कर दी गई है, परन्तु अभी भी जहां-तहां इनकी संख्या लाखों में है। इस समस्या के दो पहलू हैं—एक कानूनी और दूसरा मानवीय। किसी व्यक्ति को दबाव में रखना, उसकी लाचारी का नाजायज फायदा उठाना, उसके श्रम का उपयुक्त मूल्य न चुकाना मानवीय नहीं पाशविक व्यवहार है। अतः जरूरत है कि सामाजिक बुराई के विरुद्ध जनमत जागृत किया जाए। जहां तक कानूनी पहलू का संबंध है इसे पहले ही कानूनी अपराध मान लिया गया है। ऐसे व्यक्तियों को जो किसी को अपने पास बंधुआ रखकर काम कराते हैं, कानूनन सख्त दंड दिया जा सकता है। जरूरत है कि इनमें जागरूकता लाई जाए जिससे वह अपने अधिकारों को पाने में समर्थ हों और हीनता की भावना से मुक्ति पा सकें।

बंधुआ मजदूरों की मुक्ति के लिए पहले बीस-सूत्री कार्यक्रम के अन्तर्गत जोरदार अभियान चलाया गया था। नए बीस-सूत्री कार्यक्रम के अन्तर्गत भी उनकी मुक्ति का प्रावधान है और जो मुक्त हो चुके हैं उनको आर्थिक सहायता देकर रोजी-रोटी कमाने लायक बनाने की व्यवस्था है।

1976 में बंधुआ मजदूरी खत्म करने का कानून पास किया गया था। इसके बाद अनेक राज्यों में उसका पता लगाने, उन्हें मुक्त कराने तथा फिर से बसाने के प्रयास शुरू किए गए। राज्य सरकारों ने बड़ी दिलचस्पी और मुस्तैदी से इस कार्यक्रम को हाथ में लिया है। बंधुआ मजदूरों को फिर से बसाने की एक योजना 1978-79 में तैयार की गई थी। इस योजना में यह व्यवस्था थी कि बंधुआ मजदूरों के पुनर्वास पर जितना धन खर्च किया जाएगा उसकी आधी राशि केन्द्र सरकार राज्यों को देगी। जनवरी, 1980 में बंधुआ मजदूरों के पुनर्वास पर विशेष जोर दिया गया और इसके लिए काफी धन की व्यवस्था की गई। पता लगाने के बाद जिन 1,22,000 बंधुआ मजदूरों को मुक्त कराया गया उनमें से 1,09,000 लोगों को 1980-81 के अन्त तक फिर से बसा दिया गया है। 1981-82 की वार्षिक योजना में शेष 13,000 लोगों को फिर से बसाने की व्यवस्था की गई है।

अप्रैल-जून 1982 के दौरान विभिन्न राज्यों में लगभग 2400 बन्धुआ मजदूरों का पुनर्वास किया गया है। इस अवधि के दौरान उत्तर प्रदेश में 957, कर्नाटक में 630 और आन्ध्र प्रदेश में 593 बंधुआ मजदूरों को पुनः बसाया गया है।

जिन राज्यों में यह सामाजिक बुराई मौजूद है उनमें वर्ष 1982-83 के दौरान 32,574 बंधुआ मजदूरों के पुनर्वास का लक्ष्य रखा गया है।

इस वर्ष के जनवरी माह के अन्त तक 10,050 मजदूरों को मुक्त किया गया और इस प्रकार अब तक कुल 1,19,062 बंधुआ मजदूरों का पुनर्वास किया जा चुका है। गुजरात और राजस्थान क्रमशः 48 और 6,036 बंधुआ मजदूरों का पहले ही पुनर्वास किया जा चुका है। इसके अलावा सरकार ने राजस्थान, तमिलनाडु, बिहार और उत्तर प्रदेश में बंधुआ मजदूरों के पुनर्वास के लिए चालू वित्त वर्ष की प्रथम तिमाही के दौरान केन्द्रीय सहायता के रूप में 27.05 लाख रुपये की स्वीकृति दी है। वर्ष 1982-83 के दौरान 10 हजार बंधुआ मजदूरों के पुनर्वास के लिए केन्द्रीय सहायता के रूप में दो करोड़ रुपये देने का प्रावधान है।

श्रम मंत्रालय—ग्रामीण विकास, गृह और विधि मंत्रालयों के साथ परामर्श करके बंधुआ मजदूरों का पता लगाने, उन्हें मुक्त कराने और उन्हें पुनः बसाने में राज्यों की सहायता करने के लिए मार्ग-निर्देश तैयार कर रहा है। मंत्रालय राज्य सरकारों के सुझाव पर पुनर्वास के लिए धन की व्यवस्था करने के लिए वर्तमान कानूनों को और सरल तथा उदार बनाने के लिए योजना तैयार कर रहा है।

अन्तर्विभागीय कार्य दल ने हाल ही में अपनी बैठक में सिफारिश की है कि पुनर्वास को प्रभावशाली बनाने के लिए यह आवश्यक है कि उन्हें एक से अधिक योजनाओं के अन्तर्गत लाया जाए। समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम, राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम और जनजाति उपयोजना को बंधुआ मजदूरों को गरीबी की रेखा से ऊपर उठाने की पुनर्वास योजनाओं के साथ जोड़ा जाना चाहिए। □

आलोक सिंह,
डी०-51 विवेक विहार,
दिल्ली-32

रोजगार गारंटी योजना : एक अध्ययन

के० एम० नायडू, के० शेषैया तथा बी० एस० मूर्ति,
कामर्स विभाग, एस० बी० विश्वविद्यालय, तिरुपति।

दुनिया भर की बेतहाशा बढ़ती आबादी के करोड़ों लोगों के लिए भोजन, मकान और बुनियादी सुविधाओं को जुटाना एक ऐसी समस्या है जो आमतौर पर पूरी दुनिया में, और विशेष रूप से विकासशील व अविकसित देशों में चिन्ता का विषय है। इसीलिए भारत में, समय-समय पर गरीब लोगों की बुनियादी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अनेक योजनाएं, कार्यक्रम और दृष्टिकोण अपनाए जा रहे हैं। इन सभी कार्यक्रमों के बावजूद, और आर्थिक क्षेत्र में इतनी प्रगति के होते हुए भी बेरोजगारी बेहद बढ़ रही है और अनगिनत लोग गरीबी की रेखा के नीचे जीवन निर्वाह कर रहे हैं। रोजगार गारंटी योजना एक ऐसी ही योजना है जिसका उद्देश्य समाज के साधनहीन वर्ग की हालत को सुधारना है। वह रोजगार गारंटी योजना क्या है और इसके ध्येय क्या हैं? क्या यह कोई दृष्टिकोण या सिद्धांत या नीति है? अगर ऐसा है तो इसके मूल तत्व क्या हैं? और यह योजना दूसरी योजनाओं से किस मामले में अलग है? नीति निर्माण और कार्यान्वियन के मामले में इस योजना के क्या प्रतिफल हैं? प्रस्तुत लेख में इन्हीं प्रश्नों पर, विशेष रूप से ग्रामीण रोजगार पर जोर देते हुए, विचार किया गया है।

उद्देश्य

रोज़गार गारंटी योजना का उद्देश्य उन लोगों को रोज़गार दिलाना है जो लोग अपनी योग्यता तथा कार्य-दक्षता के अनुसार कोई काम करने के लिए तैयार हों, जोकि हमारे संविधान की प्रस्तावना में उल्लिखित औचित्य और न्याय पर आधारित हों। दरअसल, यह और कुछ नहीं है केवल हमारे बुनियादी अधिकार यानी काम करने के अधिकार की स्वीकृति मात्र है।

इस योजना के बुनियादी तत्व ये हैं :—

1. एक ऐसा पद जिसमें कोई व्यक्ति अपनी शारीरिक अथवा मानसिक कार्य कुशलता का प्रयोग कर सके।
2. ऐसा पद जिस पर काम करके, कार्यकर्त्ता के परिवार के सभी सदस्यों को भोजन, मकान, कपड़ा, स्वास्थ्य आदि जैसी बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए काफी आमदनी हो सके, साथ ही उनके आराम के लिए कम से कम आवश्यक वस्तुएं मुहैया की जा सकें।

किसी भी कर्मचारी को उसके रोज़गार से सम्बन्धित निर्णय लेने की प्रक्रिया में भाग लेने का अवसर मिले।

यह रोज़गार गारंटी योजना, एम्पलाई गारंटी स्कीम के रूप में महाराष्ट्र में और ऐम्पलायमेंट आल्टरनेशन स्कीम के रूप में कर्नाटक के ग्रामीण क्षेत्रों में काम कर रही है। इसके आन्ध्र प्रदेश में भी चालू होने की आशा है।

द्वितीय विश्व युद्ध के समय से ही कई देश इस बात पर ज्यादा से ज्यादा जोर दे रहे हैं कि जनता की न्यूनतम आवश्यकताओं को कम से कम समय में पूरा किया जाए। सन् 1980 से शुरू होने वाले दशक के प्रारम्भ में कई देशों ने सामुदायिक विकास कार्यक्रम चालू किए थे। फिर भी, दशक के अन्त तक, इन कार्यक्रमों के फैलाव का जो आदर्श रखा गया था वह असफल रहा।

अब यह अनिवार्य हो गया है कि कृषि के ढांचे का आधुनिकीकरण किया जाए ताकि गांवों के विशाल जन समुदाय को आमदनी और रोज़गार मिल सके। सन् 1960 से आरम्भ होने वाले दशक में सघन कृषि का कार्यक्रम अपनाया गया क्योंकि इस कार्यक्रम में रोज़गार मिलने की बहुत सम्भावनाएं मौजूद हैं और उस दशक के मध्य में अधिक उपज देने वाली किस्मों को अपनाया गया। इसके परिणामस्वरूप उस दशक में खेती में बहुत अधिक विकास होने के कारण खेतिहर मजदूरों को रोज़गार मिलने से भी भूमि की प्रति यूनिट में बहुत वृद्धि हुई। साथ ही अनेक देशों में, विशेष रूप से विकासशील देशों में, खेती की उत्पादकता बढ़ाने की दिशा में किसानों में विश्वास बढ़ा। यह स्पष्ट है कि इन सब कामों में यद्यपि अधिक रोज़गार दिलाने की सम्भावनाएं मौजूद हैं, फिर भी वे काम उन मजदूरों को, जो मुख्यत: बाजार पर निर्भर रहते हैं, रोज़गार दिलाने में पर्याप्त सफल नहीं हो पाए। हालात यह है कि आधुनिक प्रौद्योगिकी के अपनाने, भूमि सुधार कानून के लागू होने, और आसामियों के बारे में कानून लागू हो जाने से, छोटे किसान और पट्टेदार किसान और शिल्पी लोग अब मज़दूरी के बाज़ार में ढकेल दिए गए हैं। बड़े किसानों ने अब आदमियों की जगह मशीनों का प्रयोग शुरू कर दिया है जैसे कटाई, और गहाई-यंत्र और इनके कारण मजदूरों की उतनी आवश्यकता नहीं रह पाई। गांवों के क्षेत्रों से अधिक मजदूर तो मिलने लगे पर उनकी खपत दूसरी जगह में नहीं हो सकी, उदाहरण के लिए मशीनों के निर्माण, मशीनों की सर्विसिंग, मरम्मत वगैरा या शहरी औद्योगिक क्षेत्र में वृद्धि की वजह के बावजूद लोगों को उतना रोजगार नहीं मिल पाया।

गांवों में रोजगार की समस्या

सरकार ने पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत सामान्यत: बेरोज़गारी दूर करने के और विशेष रूप से ग्रामीण बेरोज़गारी दूर करने के मामले में कदम उठाए हैं। फिर भी बेरोज़गारी

निरन्तर सुरसा के मुंह की तरह फैलती जा रही है। नीचे लिखी तालिका से इस बात का पता चलता है।

अनुमानित ग्रामीण बेरोजगारी

(दस लाख में)

बेरोजगारी का वर्ग	1971	1973	दर	1978	1983
	बेरोज़-गारी	बेरोज़-गारी	बेरोज़-गारी	बेरोज़-गारी	बेरोज़-गारी
1. ग्रामीण सामान्य					
स्तर (पुराना)	1.73	1.83	0.92	2.00	2.20
साप्ताहिक स्तर	7.04	7.46	3.88	8.15	8.98
दैनिक स्तर	14.21	15.06	3.20	16.47	18.10

स्रोत : मसौदा पंचवर्षीय योजना 1978-83, पृष्ठ 93

जैसा कि तालिका से पता चलता है दैनिक स्तर के बेरोज़गारों की संख्या 1971 में 1 करोड़ 42 लाख से बढ़कर 1978 में 1 करोड़ 64 लाख हो गई और अनुमान लगाया जाता है कि 1983 में यह संख्या बढ़कर 1 करोड़ 81 लाख हो जाएगी। पुरानी चली आ रही बेरोज़गारी जोकि सन् 1971 में 17 लाख 30 हज़ार थी, 1978 में 20 लाख हो गई और अनुमान है कि यह संख्या 1983 में 22 लाख हो जाएगी और अनियमित बेरोज़गारी (साप्ताहिक स्तर) जोकि सन् 1971 में 70 लाख 40 हज़ार थी 1978 में 81 लाख 50 हज़ार हो गई और अनुमान है कि वर्तमान योजना के अन्त तक यह संख्या बढ़कर 89 लाख 80 हज़ार हो जाएगी। इस बढ़ती हुई संख्या के मुख्य कारण आबादी में वृद्धि, कृषि की ओर उपेक्षा या लापरवाही और धीमा तथा अनुपयुक्त औद्योगीकरण है।

रोज़गार गारंटी योजना के विभिन्न पहलुओं पर विचार करते हुए दिमाग में कई सवाल कौंध जाते हैं, उदाहरण के लिए ये प्रश्न –

1. जबकि ग्राम की आबादी का लगभग 48 प्रतिशत गरीबी की रेखा से नीचे है, विभिन्न वर्गों में इस समय कितनी नौकरियों की व्यवस्था करनी पड़ेगी ?
2. जबकि आबादी 2 प्रतिशत प्रति वर्ष से अधिक की दर से बढ़ रही है तो भविष्य में नौकरियों की कितनी आवश्यकता होगी ?
3. योजना के कार्यान्वयन के लिए साधनों को जुटाने के उद्देश्य से संगठनात्मक ढांचा कैसा होना चाहिए ?
4. सम्भावित प्रौद्योगिकी की दिशा में कौन से क्रान्तिकारी परिवर्तन होने चाहिएं ?
5. उत्पादक साधनों, जिनमें विभिन्न आय वर्गों वाले लोगों की श्रेणियां भी शामिल हैं, के प्रयोग और वृद्धि की प्रणाली में आवश्यक परिवर्तन लाने के लिए क्या कानूनी और गैर-कानूनी कदम उठाए जाने चाहिएं ?
6. दुनिया भर में यदि साधनों का प्रयोग उसी दर से किया जाता रहा, तो इस बात में लोग संदेह प्रकट कर रहे हैं कि क्या ह्रासशील साधनों का विकास और वृद्धि भविष्य में भी की जा सकती है या नहीं ? यदि कोई राष्ट्र रोज़गार गारंटी योजना जैसे किसी अत्युत्साही कार्यक्रम को पूरा करना चाहता है और उसके लिए साधनों का जबर्दस्त दोहन व प्रयोग करना शुरू करता है तो क्या ऐसा करने से उस राष्ट्र या राज्य की विकास प्रक्रिया को खतरा पैदा होगा ? यद्यपि योजना की सम्भाव्यता को दृष्टि में रखते हुए, समस्याएं एक अंधकारमय भविष्य की ओर इंगित करती हैं फिर भी अब समय आ गया है कि हम ग्रामीण भारत के सुविधाहीन वर्गों को रोज़गार की गारंटी दिलाने के तौर-तरीके खोज निकालें।

नीति का विकल्प

उपर्युक्त विश्लेषण से यह पता चलता है कि ग्रामीण बेरोजगारी की समस्या, विशेष रूप से ग्राम विकास के लिए और सामान्यतः सर्वांगीण विकास के लिए, एक खतरा पैदा कर रही है। आर्थिक विकास पर लिखा जाने वाला विशाल साहित्य इस बात की ओर इशारा करता है कि जरूरत इस बात की है कि खेती से बहुत से लोगों को हटाकर दूसरे धंधों में लगा दिया जाए। इसके लिए कृषि और औद्योगिक दोनों ही क्षेत्रों का साथ-साथ विकास होना जरूरी है। भारत के संदर्भ में तथाकथित हरित क्रांति ने या नई प्रौद्योगिकी ने कृषि विकास की दिशा में पहल कर दी है और इसमें अधिक रोज़गार पाने की गुंजाइश है। इस समय इस बात की जरूरत है कि हम तकनीकी नीति में ऐसा सुधार करें ताकि आर्थिक विकास में बहुमुखी प्रगति हो सके यानी नौकरियों को गारंटी तो हो ही, विकास भी हो पर साथ ही उस गारंटी के साथ-साथ औचित्य या समदृष्टि हो।

एक और भी बात है। ग्रामीण क्षेत्रों में गैर-खेती गतिविधियों का विकास किया जाए और उस में नौकरी के अवसर पैदा करने को प्रोत्साहित किया जाए। अगर ग्राम व कुटीर उद्योगों, डेयरी उद्योग, मुर्गी पालन, रेशम के कीड़ों का पालन आदि धंधों का विकास किया जाए तो इनके जरिए काफी लोगों को रोज़गार मिल सकेगा और बेरोजगारी काफी हद तक दूर हो सकेगी। अगर ये सब काम व्यवस्थित क्रम से हो जाएं अथवा साथ-साथ हो जाएं तो हमारे गांव के अधिकांश लोगों के लिए निकट भविष्य में रोज़गार की गारंटी हो जाएगी। इससे ग्रामीण जनता के कल्याण का कार्य भी प्रशस्त होगा। इस संदर्भ में यह कहना अप्रासंगिक नहीं होगा कि सरकार एक अलग ऐसी संस्था की स्थापना करे जिसे कि रोज़गार की गारंटी के लिए नीति निर्धारित करने और कार्यान्वियन का पूरा अधिकार हो। □

अनुवाद : ब्रजलाल उनियाल,
के० 38-एफ, साकेत,
नई दिल्ली-110017

केन्द्रीय भवन अनुसंधान संस्थान, रुड़की द्वारा ग्रामीण आवास समस्या का समाधान

डा० योगेन्द्रनाथ शर्मा 'अरुण'

केन्द्रीय भवन अनुसंधान संस्थान, रुड़की

हमारा देश गाँवों में बसा हुआ है जहां लगभग 50 प्रतिशत लोग अभी भी कच्चे मकानों में रहते हैं । इन मकानों की दीवारें मिट्टी की तथा छत घास फूंस के बने छप्पर की होती हैं। मिट्टी के इन मकानों में बहुत से मकान बरसात के दिनों में गिर जाते हैं तथा इनमें प्रति वर्ष काफी मरम्मत की आवश्यकता पड़ती है । इसके अलावा, पुराल, फूंस, भींड, मूंज, पाल, मिरा एवं नारियल आदि से बने छप्परों में प्रायः आग लग जाती है और कभी-कभी तो पूरा गांव भीषण अग्नि काण्ड की चपेट में आ जाता है, जिसके फलस्वरूप ग्रामीणों को काफी जान माल की हानि उठानी पड़ती है । फिर भी गांवों में छप्परों का प्रयोग होता रहा है और होता भी रहेगा; शायद इसलिए कि इनके बनाने का सारा सामान ग्रामीण को गांव में ही आसानी से मिल जाता है। अतः यह आवश्यक हो जाता है कि छप्परों में आग लगने की संभावना को कम करने की विधि खोजी जाए ।

केन्द्रीय भवन अनुसंधान संस्थान, रुड़की ने जहां एक ओर देश के सम्मुख उपस्थित आवास समस्या के सामाधान हेतु अनेक विधियां विकसित की हैं, वहीं गांव में कच्चे मकानों की दीवारों को जलरोधी बनाने तथा फूंस से बने छप्परों को आग से बचाने के लिए कुछ सरल विधियां खोज निकाली हैं जो बड़ी आसानी से ग्रामीणों द्वारा अपनाई जा सकती हैं । इनमें से कुछ विधियों को दिया जा रहा है, ताकि देहातों में रहने वाले लोगों को इनकी जानकारी हो सके और वे इनसे लाभ उठा सकें ।

1. कच्ची दीवारों का वर्षा से बचाव

इसके लिए संस्थान ने मिट्टी, भूसा एवं 'कटबैक' (अर्थात् तारकोल, मोम और मिट्टी का तेल) से बने एक 'जलरोधी लेप' की सिफारिश की है। इस विधि की रुड़की के आसपास के गांवों में सफलतापूर्वक परीक्षा की जा चुकी है । इससे लगभग पांच छह वर्षों तक कच्चे मकान सुरक्षित रह सकेंगे और ग्रामीण हर साल की मरम्मत आदि के झंझट से बचे रहेंगे ।

इस जलरोधी लेप के लिए ऐसी मिट्टी लेनी पड़ती है, जो न तो अधिक रेतीली हो और न अधिक चिकनी । ठीक प्रकार की मिट्टी में रेत की मात्रा एक चौथाई होनी चाहिए तथा चिकनी मिट्टी की मात्रा अधिक । लेप बनाने के लिए ऐसी एक घनफुट

मट्टी में 2 किलो गेहूं का भूसा मिलाकर उसे पानी से सान लेते हैं और गारा बना लेते हैं। लगातार 10-12 दिन तक सुबह-शाम पैरों से अथवा फावड़े से कुचलते हैं, ताकि मिश्रण एक हो जाए। ध्यान देने की बात यह है कि घोल में एक तो ढेले न हों, दूसरे भूसा पूरी तरह सड़ कर मुलायम पड़ जाए। "कट बैक" बनाने के लिए 100 कि० ग्रा० तारकोल को गर्म करके धीरे-धीरे 20 लीटर मिट्टी के तेल में मिला कर घोल बना लेते हैं और फिर एक कि० ग्रा० मोम पिघला कर इस घोल में अच्छी तरह मिला लेते हैं। इसके बाद एक घन फुट मिट्टी के गारे में दो किग्रा० 'कटबैक' घोल के हिसाब से मिला लिया जाता है। जब यह अच्छी तरह मिल जाता है, तो गारे की दीवार पर इसकी लिपाई की जाती है। लिपाई करने से पूर्व गारे की दीवार पर साधारण मिट्टी का लेप कर देते हैं ताकि गड्ढे भर जाएं।

दीवार को पानी से भिगो लेते हैं जिससे घोल दीवार को आसानी से पकड़ सके और जम जाए। यह लेप आधा या पौना इंच की मोटाई का लगाना चाहिए। चार दिन पश्चात सूखने पर यदि दीवार पर कुछ दरारें दिखाई पड़ें तो उन्हें साधारण गोबर की लेप से भर देते हैं।

इस विधि में 100 वर्ग फीट दीवार पर पौना इंच का घोल बनाने और लगाने की कुल लागत लगभग 25 रु० आती है, जो ग्रामीणों द्वारा इन कच्चे मकानों की हर साल की मरम्मत से बहुत कम है, बल्कि नहीं के बराबर है।

2. छप्परों को आग से बचाना

आग से बचाने के लिए छप्पर को सबसे पहले साधारण रीति से बनाया जाता है, परन्तु इस बात का ध्यान रखा जाता है कि उसका ढांचा अधिक मजबूत तथा टिकाऊ हो। इसके लिए बांसों को लगभग 9 इंच की दूरी पर रख कर छप्पर बांधा जाता है। इसके बाद छप्पर को दीवारों या बल्लियों के ऊपर रख कर मजबूत रस्सी द्वारा बांध दिया जाता है।

इस प्रकार बने छप्पर को 'अग्नि-अवरोधक' बनाने के लिए छप्पर की ऊपरी सतह पर एक इंच मोटा तथा निचली सतह पर 3 सूत मोटा, ऊपर बताई रीति से बने 'जलरोधी गारे' का प्लास्टर कर दिया जाता है। इसके बाद छप्पर को 2 या 3 दिन सूखने के लिए छोड़ दिया जाता है। यदि उसमें दरारें पड़ी दिखाई दें, तो उसी गारे को दरारों में भर कर हल्का सा प्लास्टर कर देते हैं। इसके सूखने के बाद विशेष प्रकार की गोबर की लिपाई कर दी जाती है। इसे बनाने के लिए बराबर मात्रा में गोबर तथा मिट्टी मिलाकर उसमें प्रति घन फुट के हिसाब से दो किलो 'कट बैक' मिला देते हैं।

इस विधि से 100 वर्ग फुट छप्पर बनाने में लगभग 150 रु० का खर्चा आता है। साधारण छप्पर के मुकाबले में यह खर्चा देखने में अधिक लगता है, परन्तु इससे मिलने वाले लाभ की तुलना में यह कुछ भी नहीं है। इस प्रकार से बने छप्परों में आग नहीं लगेगी और न ही तेज हवा के कारण आग फैलेगी। जबकि साधारण छप्पर की आयु एक दो वर्ष होती है, यह छप्पर, पांच छः वर्ष तक चलेगा। इस छप्पर में न तो पानी टपकेगा और न ही यह छप्पर जलेगा।

रुड़की के आस-पास कुछ गांवों में इस प्रकार के छप्परों का सफल प्रदर्शन किया जा चुका है।

3. ईंट पट्ट पद्धति

आजकल देखने में भी आया है कि गांवों में भी अब कच्चे मकानों की अपेक्षा लोग पक्के मकान बनवाना अधिक पसन्द करते हैं। इस बात को ध्यान में रखते हुए केन्द्रीय भवन अनुसंधान संस्थान, रुड़की ने समाज के कमजोर एवं पिछड़े वर्गों के लिए आवास हेतु एक पूर्व निर्मित पद्धति का विकास किया है, जिसे अपनाने से मकान की कुल लागत में 33 प्रतिशत की बचत होती है तथा सीमेंट, ईंट, लोहा एवं लकड़ी में क्रमशः 20, 40, 40 और 50 प्रतिशत की बचत भी होती है। यह विधि उत्तर प्रदेश के कुछ गांवों में 'हरिजन आवासों' के निर्माण हेतु प्रयोग की जा चुकी है तथा इसी विधि से गाजियाबाद में आर्थिक दृष्टि से पिछड़े लोगों के लिए 3350 मकान बनाए गए हैं। बंगाल इंजीनियरिंग ग्रुप, रुड़की ने इस विधि से अपने जवानों के लिए 52 मकान बनाए तथा रुड़की के निकट ग्राम सुनहरा में भूमिहीन मजदूरों के लिए 19 मकान बनवाए गए। ग्राम रुहालकी में एक हरिजन कालोनी के निर्माण हेतु इसी विधि को पूर्ण सफलता के साथ अपनाया गया है। अत्यन्त हर्ष का विषय है कि राष्ट्रीय प्रगति के लिए इसी विधि को अपनाकर पंजाब सरकार ने ग्रामीणों के लिए 4000 मकान बनवाए हैं। यह विधि बहुत सरल है तथा इसे ग्रामीण राज और मजदूर आसानी से अपना सकते हैं।

इस 'ईंट पट्ट पद्धति' में छत के लिए 54 सें० मी० चौड़े तथा 100 सें०मी० लम्बे पट्ट, 6 मि०मी० मोटे 2 सरिये डालकर बना लिए जाते हैं। इन पट्टों को कंक्रीट की पूर्व निर्मित कड़ियों (बीम) पर टिका कर रखा जाता है। इसके बाद इनके ऊपर 6 मि०मी० का सरिया लगभग एक मीटर के फासले पर दोनों ओर बिछाकर ऊपर से 2.5 सें०मी० मोटी कंक्रीट डाल दी जाती है। ईंट पट्ट एवं कंक्रीट की कड़ियां जमीन पर ही लकड़ी के सांचों की सहायता से बना लिए जाते हैं। दीवारें, 11.5 सेंमी० आधी ईंट मोटी लगभग 120 सें०मी० के फासले पर 23 सेंमी०–23 सेंमी० (9–9) के पायों के साथ बना ली जाती हैं। इन पायों पर ही कंक्रीट की बीम रखी जाती है। मकानों को गर्मियों में ठंडा रखने के लिए अन्दर की ओर आधी ईंट मोटी कच्ची दीवार बनाई जा सकती है।

प्रधानमंत्री के बीस सूत्री कार्यक्रम के अन्तर्गत हमारे लाखों ग्रामीण भाई इन विधियों से लाभ ले रहे हैं। अन्य किसी जानकारी के लिए निदेशक, केन्द्रीय भवन अनुसंधान संस्थान, रुड़की से व्यक्तिगत अथवा पत्र लिख कर सम्पर्क किया जा सकता है। □

—अध्यक्ष, हिन्दी विभाग,
बी० एस० एम० कालेज,
रुड़की (उ० प्र०)

कोटा जिले में ट्राइसेम के अन्तर्गत अनुकरणीय उपलब्धियां

प्रभात कुमार सिंघल

चिरंजीलाल इटावा का रहने वाला है। एक समय था जब वह यूं ही निरुद्देश्य मारा-मारा फिरता था। न कोई काम न धंधा। परिवार पर एक बोझ, बचपन से ही पढ़ने-लिखने की व्यवस्था नहीं बन पाई।

चिरंजीलाल ने एक भेंट में बताया, "एक दिन कुछ दोस्तों ने राय दी, यार चिरंजी तुम यूं ही मारे-मारे फिरते हो। कुछ काम करो तो तुम्हारा भी समाज में मान-सम्मान होगा।"

चिरंजीलाल ने कहा, "तुम लोग तो मेरी घर की परिस्थिति जानते ही हो। दो जून रोटी बड़ी मुश्किल से मिल पाती है। पढ़ा-लिखा भी नहीं। फिर कौन काम देगा।"

दोस्तों ने सलाह दी, "सरकार ने गांव के बेरोजगार युवकों को काम धंधे पर लगाने के लिए विभिन्न व्यवस्सायों में प्रशिक्षण देने की योजना प्रारंभ की है। तुम भी उस योजना का लाभ क्यों नहीं उठाते।"

चिरंजीलाल बोला, "यह तो आपने बहुत अच्छी बात बताई। पर एक बात और बताओ कि ट्रेनिंग के पश्चात् काम धंधा कैसे शुरू होगा। मेरे पास पैसे नहीं और पैसों के अभाव में कोई काम-धंधा कैसे शुरू किया जा सकता है" दोस्तों ने योजना के विषय में बताया कि, "इस योजना के दो लाभ हैं। एक तो प्रशिक्षण के साथ ही कुछ रुपये भी मिलते हैं। रुपये भी लो और काम भी सीखो। दूसरा लाभ काम सीखने पर अपना रोजगार प्रारंभ करने के लिए सरकार ऋण व अनुदान भी उपलब्ध कराती है जिसे आसान किश्तों पर चुकाया जाता है।"

राजस्थान के कोटा जिले की पंचायत समिति, इटावा का रहने वाला चिरंजीलाल अपनी पिछली कहानी बताते हुए बोला, "6 महीने पूर्व मैंने साइकिल मरम्मत का प्रशिक्षण लिया था। दोस्तों की सलाह पर विकास अधिकारी जी से सम्पर्क किया और उनकी कृपा से मैं साइकिल ठीक करने के काम में दक्ष हो गया।"

आज वह बड़ा खुश है। खिले चेहरे से वह बताता है 6 माह पूर्व प्रशिक्षण के पश्चात् मैंने साइकिल मरम्मत की दुकान खोली जिससे आज मेरी आमदनी पांच सौ रुपया माहवार से अधिक हो जाती है।" प्रारंभिक दो-तीन माह आमदनी अवश्य कम रही। अब इनके पास एक दुकान भी किराये की है तथा एक लड़का भी इन्होंने अपने साथ लगा लिया है।

सिलाई से रोजगार

चिरंजीलाल से मिलती-जुलती कहानी है चौथमल विकलांग की, जिसका दायां हाथ आज से दो वर्ष पूर्व कारखाने की एक मशीन में आने से कट गया था। राम गोपाल की भी ऐसी ही कहानी है। ये दोनों ही पंचायत समिति इटावा के गांव नोनेरा के रहने वाले हैं जिन्होंने इटावा के टेलर मास्टर अब्दुल रज़ाक के यहाँ प्रशिक्षण प्राप्त किया और सरकार से सिलाई की मशीन प्राप्त कर उसी की दुकान से अपना रोजगार प्रारंभ किया है। आज ये दोनों भी 400 रुपये माहवार तक कमा रहे हैं।

हंसराज, रमेश व प्रभूलाल भी आज ट्राइसेम योजना के अन्तर्गत इटावा के मुश्ताख अंसारी कशीदाकार के यहां कशीदाकारी का प्रशिक्षण प्राप्त कर चार-चार सौ रुपये तक कमा रहे हैं।

ट्राइसेम

चिरंजीलाल, चौथमल, रामगोपाल, हंसराज, रमेश व प्रभुलाल जैसे ग्रामीण युवकों, विशेषकर गरीब वर्गों के युवकों को, जिनको अपना भविष्य अंधकार में डूबा प्रतीत होता था, उनके भविष्य के लिए नई आशा की किरण लेकर आई भारत सरकार के ग्रामीण विकास मंत्रालय द्वारा शुरू की गई ट्राइसेम योजना (ग्रामीण युवकों के लिए स्व-रोजगार हेतु प्रशिक्षण)। योजना, बढ़ती आबादी तथा बढ़ती बेरोजगारी के कारण प्रारंभ की गई। योजना का प्रमुख उद्देश्य ग्रामीण युवकों को प्रशिक्षण देकर उन्हें अपना काम धंधा प्रारंभ करने में सक्षम बनाना है जिससे उनकी बेरोजगारी दूर हो सके।

अनुकरणीय उपलब्धियां

राजस्थान के कोटा जिले में ग्रामीण युवकों के लिए स्व-रोजगार प्रशिक्षण कार्यक्रम (ट्राइसेम) योजना में अनुकरणीय उपलब्धियां रहीं। जिले में वर्ष 1980-81 से प्रारंभ की गई इस महत्वपूर्ण योजना के अन्तर्गत मार्च 82 तक 2403 युवकों का चयन किया गया जिनमें से 1809 युवकों को विभिन्न व्यवसायों, बढ़ईगीरी, लुहारगीरी, मोटर मैकेनिक, बिजली मैकेनिक, साइकिल मरम्मत, बांस की टोकरी बनाना, कशीदाकारी व सिलाई इत्यादि कार्यों में प्रशिक्षित किया गया। वर्ष 1980-81 में 515 को तथा 1981-82 में 1294 को प्रशिक्षण दिया गया।

जिला ग्रामीण विकास अभिकरण कोटा के माध्यम से गत दो वर्षों में 723

वाओं को विभिन्न व्यवसायों को प्रारंभ कर अपने पैरों पर खड़ा होने के लिए 6 लाख 36 हजार 750 रु० के ऋण व अनुदान उपलब्ध कराए गए। इनमें से 109 युवकों को 91 हजार 99 रु० की आर्थिक सहायता वर्ष 1980-81 में तथा 614 युवकों को 5 लाख 45 हजार 651 रु० की आर्थिक सहायता ऋण व अनुदान के रूप में वर्ष 1981-82 में उपलब्ध कराई गई।

योजना की सफलता का कारण अतिरिक्त जिलाधीश (विकास) श्री बी० बी० महान्ति का कठिन परिश्रम है। आपकी लगन व परिश्रम का ही परिणाम है कि वर्ष 1981-82 में 109 युवकों को ऋण व अनुदान उपलब्ध कराया गया। चालू वित्तीय वर्ष 1982-83 में प्रत्येक पंचायत समिति में 100 युवकों के हिसाब से जिले में 1200 युवकों को प्रशिक्षण देने का लक्ष्य रखा गया है। उल्लेखनीय बात यह भी है कि प्रत्येक व्यवसाय के लिए बैंक ऋण और अनुदान की राशि 5 हजार रु० तक निर्धारित की गई ताकि लाभार्थी पर बैंक ऋण का अनावश्यक बोझ न पड़े।

आवश्यकता

योजना की अधिक सफल क्रियान्वित के लिए आवश्यक है कि जहां पर जिस उद्यम का कोई चलन न हो वहां उससे संबंधित प्रशिक्षण न दिया जाए। मसलन और गांव में बिजली नहीं है तो इससे संबंधित प्रशिक्षण से क्या लाभ?

दूसरे, प्रशिक्षण उस विषय में दिया जाना ज्यादा लाभकारी रहेगा जिसमें कि लाभार्थी को प्रशिक्षण के बाद काम मिल सके। उदाहरण के तौर पर जिले में जगह-जगह हैण्डपम्प लगवाए गए हैं। रात-दिन इस प्रकार की शिकायतें सुनने को मिलती हैं कि फलां गांव में हैण्डपम्प खराब है। जलप्रदाय विभाग वालों के पास कारीगर का अभाव रहता है। वह खराब हैण्डपम्पों का रख-रखाव ठीक प्रकार से करने में असमर्थ रहते हैं। ऐसे में अगर गांवों के बेरोजगार युवाओं को हैण्डपम्प सर्विस में प्रशिक्षण दिया जाए तो ज्यादा लाभकारी हो सकता है।

योजना की सफल क्रियान्विति के के लिए यह आवश्यक है कि प्रशिक्षण का संबंध प्रशिक्षण के पश्चात् प्रशिक्षणार्थी के शुरू करने वाले धंधे से जोड़ा जाए।

कुम्हारगीरी से मालामाल

पग-पग पर बेबसी, जमाने भर की ठोकरें, महंगाई की मार। लम्बा पूरा परिवार। बिनायका गांव का रहने वाला श्रीकृष्ण टूट चुका था। गृहस्थी को कैसे चलाए यह समस्या हर समय मुंह बाये खड़ी रहती। गांव में अहसासों व गरीबी के बीच गुजारे गए बचपन में पढ़-लिख भी नहीं सका। उस पर घर का पुश्तैनी धंधा भी नहीं। हर प्रकार से असहाय व निरुपाय श्रीकृष्ण थोड़ी बहुत मजदूरी कर जैसे-तैसे जीवन रूपी गाड़ी को चला रहा था।

एक भेंट में श्रीकृष्ण ने बताया, "आखिर जीवन के लिए पेट भर दो जून रोटी तो चाहिए ही। भूख जब सहन नहीं होती तो मरता क्या ना करता। सट्टे की लत पड़ गई। मन में कुछ करने का अहसास बार-बार कचोटता था। सोचता सट्टे से ही कुछ पैसा आएगा तो काम चलेगा। परन्तु इससे मुझे सन्तोष नहीं था। आखिर एक दिन सरकारी जीप में कुछ अधिकारी हमारे गांव में आए। मुझे गांव के सरपंच से पता चला कि खादी और ग्रामोद्योग विभाग कुम्हार के कार्य के लिए आर्थिक सहायता उपलब्ध कराता है। बस फिर क्या था, मैं चल पड़ा सरकारी अधिकारियों के पास। यह मेरा सौभाग्य था कि मेरी प्रथम भेंट ही उद्योग विस्तार अधिकारी से हो गई। मैंने उनको अपनी समस्या कह सुनाई और सारी बात सच-सच बताई।"

वह कहने लगे—"अगर तुम वास्तव में सट्टे वाली लत छोड़ दो और कुम्हारगीरी का कार्य लगन से करो तो खादी व ग्रामोद्योग बोर्ड तुम्हारी आर्थिक सहायता कर सकता है।"

उसने आगे बताया "मेरे आश्वासन देने पर जब वह आश्वस्त हो गए तो उन्होंने मुझ से एक फार्म भर कर अगूठा लगवाया। कुछ दिन पश्चात् ही 1300 रु० मुझे मिल गए। 1150 रु० का ऋण खादी व ग्रामोद्योग बोर्ड द्वारा तथा 150 रु० की की अनुदान राशि से मैंने अपना कुम्हारगीरी का कार्य शुरू किया।

श्रीकृष्ण, ईमानदार, मेहनती व जीवट प्राणी है। उसने 450 रु० की पहली किश्त भी जमा करा दी है। खादी व ग्रामोद्योग बोर्ड की सहायता प्राप्त कर श्रीकृष्ण आज पहले से एक बेहतर व अच्छी जिंदगी जी रहा है। गरीबी की रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाला श्रीकृष्ण अब लगभग 400 से 500 रु० माहवार कमा रहा है। उसके दो लड़के व चार लड़कियां हैं। एक लड़के व लड़की की शादी उसने अपनी इसी कमाई से की। दो लड़कियों की शादी वह पहले ही कर चुका था।

श्रीकृष्ण की पत्नी ने बताया, "हुजूर आज तो गांव में हमारी साख बन गई। कल तक जो मुंह फेर कर चले जाते थे आज पीड़ा पूछने लगे हैं। भला हो सरकार का जिससे दो जून भर-पेट रोटी तो नसीब होने लगी।"

श्रीकृष्ण का पूरा परिवार आज आर्थिक प्रगति के मार्ग पर अग्रसर है। उसका पूरा परिवार एक इकाई के रूप में कुम्हारगीरी के कार्य में जुटा है।

राजस्थान के कोटा जिले में गत दो वर्षों में श्रीकृष्ण जैसे ही 524 गरीब परिवारों को ग्रामोद्योग इकाई लगाने के के लिए खादी एवं ग्रामोद्योग बोर्ड ने 12 लाख 9 हजार 270 रुपये के ऋण व अनुदान उपलब्ध कराए हैं। इसमें से वर्ष 1981-82 में मार्च 82 तक 226 ग्रामोद्योग इकाइयों को 4 लाख 53 हजार 970 रु० के ऋण व अनुदान उपलब्ध कराए। इनमें से 169 ग्रामोद्योग इकाई अनुसूचित व जनजाति के व्यक्तियों द्वारा लगाई गईं, जिनको 3 लाख 14 हजार रुपये के ऋण व अनुदान उपलब्ध कराए गए। ☐

के० आर० 420,
माला रोड, कोटा-324001
(राज०)

सार्वजनिक वितरण प्रणाली : गरीब का सहारा

महेश चन्द्र शर्मा

एक प्रजातांत्रिक समाजवादी अर्थ-व्यवस्था में सार्वजनिक वितरण प्रणाली समाजवादी समाज की रचना में महत्त्व-पूर्ण भूमिका अदा करती है। हमारी राष्ट्रीय सरकार भी इसी भावना से प्रेरित होने के कारण इसे सफल बनाने हेतु दृढ़ प्रतिज्ञ हैं। सार्वजनिक वितरण प्रणाली का अभिप्राय आवश्यक उपभोक्ता वस्तुओं को स्थान, समय एवं आर्थिक पहलू की उपयोगिता का ध्यान रखते हुए न्यायपूर्ण कीमत पर तथा किसी उप-युक्त आधार पर समान वितरण की समुचित व्यवस्था से है।

भारत में योजना की आवश्यकता

(1) आवश्यक उपभोक्ता सामग्री की मांग बेलोचदार होने के कारण, उत्पादन की थोड़ी सी घट-बढ़ इनकी कीमतों को प्रभावित करती है, साथ ही अधिकांश उपभोक्ता सामग्री कृषि क्षेत्र से प्राप्त होने के कारण मौसमी परिवर्तनों का भी इन पर प्रभाव पड़ता है, अतः कीमतों को स्थिर रखने के लिए यह आवश्यकता महसूस की गई कि आवश्यक उपभोक्ता सामग्री को कुशल प्रबन्ध की निगरानी में वितरित करने हेतु एक ऐसी नीति बनाई जाए ताकि लोगों की आम उपभोग की वस्तुएं उचित कीमत पर उपलब्ध हो सकें।

(2) किसी भी योजना की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि केन्द्र एवं राज्य सरकारों की विभिन्न गतिविधियों में पर्याप्त समन्वय हो और इसी आशय से इस योजना के सम्बन्ध में भी केन्द्र का दायित्व जहां मूल्य स्थिरता बनाए रखने, बफर स्टाक करने का है, वहां राज्यों पर वस्तुओं की नियमित पूर्ति के अति-रिक्त जहां जरूरी हो वहां इन दुकानों को खोलने की व्यवस्था करने का भार डाला गया है।

(3) एक कुशल सार्वजनिक वितरण प्रणाली की इसलिए भी आवश्यकता मह-सूस की गई कि चुनी हुई आवश्यक उप-भोक्ता वस्तुओं के उत्पादन, वसूली, भंडारण, परिवहन और वितरण में समन्वय बना रहे।

(4) सार्वजनिक वितरण प्रणाली की व्यूह-रचना इस बात को मद्देनजर रखते हुए भी की गई है कि अधिकांश कृषि उत्पादन जैसे अनाज एवं औद्योगिक कच्चेमाल फसल कटने के तुरन्त बाद बाजार में आ जाते हैं तब कीमते कम होती हैं। इसलिए इन जिन्सों को एक ऐसी कीमत पर लेने की व्यवस्था की आवश्यकता महसूस की गई जिससे न केवल उत्पादकों को कम से कम लाभ अवश्य मिले वरन् सरकारी माध्यमों से उनका समुचित वितरण कर कमजोर वर्ग को दुहरा लाभ देने की भावना भी जाग्रत हो। एक तो अपेक्षाकृत अच्छे और सुगमता के समय उत्पाद को न्यूनतम लाभ अवश्य मिलता रहेगा और संकट के समय लोगों को भी आवश्यक वस्तुएं उचित कीमत पर मिलती रहेंगी।

(5) इस योजना से समाज को चोर-बाजारी, कृत्रिम अभाव, मिलावट, अनु-चित संग्रह, कम नाप-तोल, एकाधिकारिक प्रवृत्तियों जैसी अवांछनीय गतिविधियों से राहत मिलेगी फलतः उपभोक्ताओं में सुरक्षा भावना का संचार होगा जिससे जनकल्याण में वृद्धि होगी और लोगों का जीवन स्तर ऊपर उठेगा।

(6) प्रारम्भ में केवल कुछ चुनी हुई वस्तुओं में खाद्यान्न (गेहूं, चावल, मोटे अनाज), खाद्य तेल, चीनी, मिट्टी का तेल और कपड़े की बिक्री ही इस योजना के अधीन की जाएगी, किन्तु निकट भविष्य में नहाने-धोने का साबुन, चाय, काफी, मसाले, माचिस, घरेलू उपयोग का कोयला, कापियां, उर्वरक इत्यादि का भी समावेश किया जा सकता है।

(7) यह योजना समाजवादी समाज की रचना में महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकती है। हमारे यहां व्यवसायियों की स्थिति उपभोक्ताओं की अपेक्षा कहीं अधिक प्रबल है। अतः यह कदम आर्थिक सत्ता के संकेन्द्रण को रोकने में एक प्रभावी भूमिका का निर्वाह करेगा।

(8) यद्यपि पिछले कुछ महीनों में वस्तुओं के थोक मूल्य सूचकांक में काफी गिरावट आई है किन्तु, अभी इस स्थिति को संतोषजनक नहीं कहा जा सकता है। अतः कमजोर वर्ग के हितों की रक्षा करने के उद्देश्य से सरकार ने इन वस्तुओं को एक ही मूल्य पर इन दुकानों से सुलभ कराने का प्रयास किया है ताकि इसका प्रयोग मंहगाई पर अंकुश लगाने हेतु एक अस्त्र के रूप में भी किया जा सके।

(9) यह योजना दुर्गम एवं पहाड़ी इलाकों में रहने वाले व्यक्तियों की आव-श्यकता पूर्ति पर तो ध्यान देगी ही

जिससे उनकी वस्तु सम्बन्धी समस्याओं का समाधान होगा। इसके अतिरिक्त इन दुकानों में अभिवृद्धि से लाखों व्यक्तियों को आपूर्ति बढ़ाने, वितरण का कार्य देने से रोजगार भी सुलभ होगा जिससे बेरोजगारी की समस्या का भी कुछ हद तक निवारण सम्भव हो सकेगा।

छठी योजना में महत्वपूर्ण स्थान

सार्वजनिक वितरण प्रणाली को छठी योजना (1980-85) के अन्तर्गत महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। आवश्यक उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन, वसूली, परिवहन, भंडारण और वितरण में समन्वय स्थापित करने हेतु निम्न प्रकार की व्यूह रचना निर्मित की गई है।

(1) छठी योजना में सार्वजनिक वितरण प्रणाली की आधारभूत संरचना का पुनर्निर्माण करने एवं इसे और सुदृढ़ करने की आवश्यकता महसूस की गई है ताकि यह प्रणाली देश के सभी भागों, खासकर पिछड़े, दूरस्थ और दुर्गम स्थानों में कारगर ढंग से कार्य करे और इन स्थानों में इसका शीघ्रता से विस्तार किया जा सके।

(2) छठी योजना में यह कहा गया है कि सहकारी समितियों और नागरिक पूर्ति निगम दोनों मिलकर इस समय उपभोक्ता की आवश्यकताओं का बहुत ही कम अंश की पूर्ति कर पा रहे हैं। इसलिए योजना अवधि में अनिवार्य वस्तुओं के व्यापार में इनके योगदान में काफी वृद्धि करने की आवश्यकता महसूस की गई है। जैसा कि ज्ञात है, वर्तमान में केन्द्रीय अभिकरणों के माध्यम से आवश्यक जिन्सों का वितरण राज्यों में अधिकांशतः राज्य नागरिक पूर्ति निगमों, राज्य स्तर की अपेक्षा उपभोक्ता सहकारी समितियों के माध्यम से किया जा रहा है। अनेक राज्यों में उपभोक्ता सहकारी समितियों का विस्तार हुआ है। सन् 1979-80 में कुल 2.5 लाख उचित कीमत की दुकानों में से लगभग 72 हजार दुकानें सहकारी क्षेत्र में थीं। इनमें से भी 58 हजार ग्रामीण क्षेत्रों में तथा 14 हजार शहरी क्षेत्रों में थीं। देश में उचित मूल्य की दुकानों की संख्या इस योजना के अन्त तक 3.5 लाख हो जाने की अपेक्षा की गई है।

(3) योजना में नागरिक पूर्ति निगमों को उपभोक्ता वस्तुओं के संग्रह हेतु ऐसे उपयुक्त स्थानों पर गोदाम निर्माण करने को कहा गया है जहां पर केन्द्रीय एवं राज्य भण्डार व्यवस्था निगमों तथा सहकारी समितियों ने ऐसी सुविधा नहीं जुटाई है।

(4) योजना में राष्ट्रीय एवं राज्य दोनों स्तरों पर सार्वजनिक वितरण की दुकानों में आवश्यक वस्तुएं उपलब्ध कराने एवं वितरण करने की व्यवस्था की गई है। खाद्यान्न का कार्य भारतीय खाद्य निगम द्वारा किया जाता है। खाने के तेल का आयात और वितरण की मुख्य जिम्मेदारी भारतीय राज्य व्यापार निगम को सौंपी गई है। चीनी लेने का कार्य कुछ राज्यों में खाद्य निगम और कुछ राज्यों में नागरिक पूर्ति निगम अथवा सहकारी समितियों द्वारा किया जाता है। माचिस वितरण का काम खादी एवं ग्रामोद्योग आयोग को सौंपा गया है इसके अतिरिक्त मिट्टी के तेल के वितरण का कार्य भारतीय तेल निगम, हिन्दुस्तान पैट्रोलियम जैसे सरकारी निगमों के अधीन रखा गया है। वस्तुओं को अलग-अलग निगमों को सौंपने का उद्देश्य इस प्रणाली की कुशलता को बढ़ाना है।

(5) योजना में इस बात पर विशेष बल दिया गया है कि व्यावहारिक रूप से सहकारी क्षेत्र एवं निजी क्षेत्र स्वेच्छा से अगम्य क्षेत्रों, से विशेषकर जहां समाज के कमजोर तबके के लोग रहते हैं, जाना नहीं चाहते, अतः योजना में ऐसे दुर्बल संसाधन वाले राज्यों में राज्यों को नागरिक पूर्ति निगमों की स्थापना करने तथा गोदामों का निर्माण करने के लिए राज्य सहायता एवं ऐसे दुर्गम क्षेत्रों में फुटकर बाजारों को राज्य सहायता देने की भी व्यवस्था की गई है।

14 जनवरी, 1982 को प्रधानमंत्री द्वारा सरकार के नवीन बीस सूत्री कार्यक्रम की घोषणा की गई है इस कार्यक्रम में भी इस बात पर विशेष बल दिया गया है कि उचित दर की दुकानों की संख्या बढ़ाकर, एवं दूरदराज के इलाकों में चलती-फिरती दुकानों की व्यवस्था करके, औद्योगिक क्षेत्रों में काम करने वाले मजदूरों और छात्रावासों में रहने वाले विद्यार्थियों की आवश्यकताओं को पूरा करने तथा उपभोक्ताओं की जरूरतों को पूरा करने के लिए जोरदार कदम उठाए जाएं और इसके लिए अधिक संख्या में दुकानें खोलकर सार्वजनिक वितरण प्रणाली को और विस्तृत किया जाए।

उपर्युक्त तथ्यों से यह बात स्पष्ट है कि सरकार ने सार्वजनिक वितरण प्रणाली के महत्व को भारतीय सन्दर्भ में समझ कर इसके प्रसार के लिए और व्यापक कदम उठाने के क्रम में इस योजना को छठी पंचवर्षीय योजना एवं नवीन बीस सूत्री कार्यक्रम में स्थान देकर निःसन्देह एक विवेक पूर्ण कदम उठाया है, किन्तु जैसा कि ज्ञात है भारत में लगभग 50 प्रतिशत जनसंख्या गरीबी रेखा के नीचे जीवनयापन कर रही है। इन गरीबों की सम्पूर्ण आय अनिवार्यताओं की पूर्ति में ही व्यय हो जाती है इसलिए अगर समाजवादी समाज की भावना से प्रेरित हमारी सरकार अनिवार्य वस्तुओं को स्थिर एवं उचित मूल्य पर, सही किस्म में, सही नाप तौल में नियमित रूप से गरीब उपभोक्ताओं तक वास्तविक अर्थ में पहुंचाना चाहती है और इनको शोषण से मुक्ति दिलाने के साथ जीवन-यापन के बेहतर अवसर देना चाहती है तो इस प्रणाली में कुछ और संशोधनों की आवश्यकता को स्वीकार करना होगा। सार्वजनिक वितरण प्रणाली की कुशलता में अभिवृद्धि की दिशा में निम्नलिखित सुझाव अधिक कारगर सिद्ध हो सकते हैं :—

सुझाव

1. यद्यपि छठी योजना में सार्वजनिक वितरण प्रणाली की दक्षता में वृद्धि करने हेतु एक फैली हुई रणनीति निर्मित की गई है किन्तु कुछ दूरस्थ तथा अगम्य जनजाति क्षेत्रों में अधिकांश लोगों की प्राथमिक समस्या वितरण की नहीं अपितु क्रय शक्ति के अभाव की है। अतः इन क्षेत्रों में ग्रामीण विकास के कार्य शुरू करवाए जाएं ताकि वे कार्य करके अपनी आय बढ़ा सकें।

2. राष्ट्रीय तथा राज्य स्तर पर कार्य कर रही विभिन्न सार्वजनिक वितरण एजेंसियों में यथा समय उपयुक्त समन्वय

की स्थापना हेतु प्रभावी संचार मशीनरी की व्यवस्था की जानी चाहिए।

3. उचित दर की दुकानें आर्थिक रूप से विकासक्षम हों ताकि धनाभाव में वितरण कार्य में विलम्ब न हो इसके लिए इन दुकानों पर रोजमर्रा की उपभोग वस्तुएं या तीव्र-गामी आवश्यकता की वस्तुएं उपलब्ध कराई जाएं। उपभोक्ताओं का इन दुकानों पर नैतिक दबाव बना रहे इस लिए उपभोक्ता संघों को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

4. जनसंख्या नियन्त्रण हेतु प्रभावी कदम उठाए जाएं ताकि बढ़ती मांग पर अंकुश लग सके। इस लिए सरकार को परिवार नियोजन कार्यक्रम पर अधिक बल देना चाहिए।

5. योजना आयोग द्वारा केन्द्र व राज्य सरकारों से वार्षिक योजना पर विचार विमर्श कर इस योजना के अधीन आने वाली वस्तुओं के उत्पादन की प्राथमिकताएं तय की जानी चाहिए ताकि इन वस्तुओं का उत्पादन वितरण के सन्दर्भ में उचित समय पर किया जा सके। और विभिन्न उचित मूल्य की दुकानों के अधीन आने वाले राशन-कार्डधारियों की चुनाव द्वारा एक समिति बना दी जाए ताकि इन दुकानों में आमतौर पर होने वाली गड़बड़ियों पर नियन्त्रण रखा जा सके।

6. प्रायः यह भी सुनने में आता है कि उचित मूल्य की दुकानों पर बेची जाने वाली वस्तुओं एवं खुले बाजार में बेची जाने वाली उन्हीं वस्तुओं के मूल्य में यदि अन्तर अधिक है या उन वस्तुओं का खुले बाजार में अभाव है तो वे वस्तूएं खुले बाजार में बिकने चली जाती हैं। परिणामस्वरूप गरीब उपभोक्ता हाथ मलते ही रह जाते हैं। इस दुष्प्रवृत्ति पर नियन्त्रण हेतु सरकार को समय-समय पर आकस्मिक रूप से स्टाक चैक करके और जन-सम्पर्क द्वारा उचित अनुचित वितरण के बारे में सूचना प्राप्त करके कुछ कठोर कदम उठाने होंगे। □

महेश चन्द्र शर्मा
प्रवक्ता
व्यावसायिक प्रशासन विभाग,
राजर्षि महाविद्यालय, अलवर
(राज०)

खुशहाली की ओर बढ़ते कदम

जुलाई मास के प्रथम सप्ताह में मुझे अलीगढ़ जिले के बसई काजी गांव में जाने का अवसर मिला। इस गांव में करीब एक-डेढ़ मास पूर्व पंचायत का चुनाव हुआ। श्री गजराज सिंह पंचायत के प्रधान चुने गए। गांव की आबादी लगभग दो हजार है। आश्चर्य की बात यह है कि इन थोड़े दिनों में ही इस प्रधान ने गांव में विकास का सिलसिला खड़ा कर दिया है। ग्राम आवास योजना के अन्तर्गत गांव के धोबियों के 8 मकान बन कर तैयार हो गए हैं और एक खटीक का मकान पूरा होने जा रहा है। धोबियों को कुएं के लिए 10,000 रुपये मंजूर हुए जो बन कर तैयार हो गया। इसी अवधि में एक कुआं बाल्मीकियों के लिए भी बन कर तैयार हो गया। गांव के माजरा राईया में प्राथमिक स्कूल बनवाने का उपक्रम जारी है। यह माजरा पूरे का पूरा जाटवों का है। गांव में शीघ्र ही एक अस्पताल खुलवाने की योजना है जिसके लिए जमीन ठाकुर घमन्डी सिंह द्वारा दे दी गई है। सरकार भी गांव के विकास की प्रगति देख कर रुपये पैसे से यथा शक्ति योग दे रही है। यह गांव सड़क से जुड़ा हुआ है। परन्तु सड़क ऊबड़-खाबड़ हो गई है। इसकी मरम्मत के लिए उत्तर प्रदेश सरकार के सार्वजनिक निभाग विभाग से आवेदन किया गया है। चूंकि इस क्षेत्र में इस मौसम में टिण्डों का बहुत बड़ी मात्रा में उत्पादन होता है और इसे दिल्ली आदि बड़े शहरों में भेजा जाता है, अतः ग्रामीणों की परिवहन सुविधा को ध्यान में रखते हुए इस सड़क की शीघ्र ही मरम्मत बड़ी जरूरी है।

इस गांव में लगभग 40 ट्यूबवैल हैं, परन्तु देखने पर पता चला कि बिल्कुल ट्यूबवैल के पास भी खरीफ की खेती सूखी पड़ी है। कारण ट्यूबवैलों के लिए बिजली उपलब्ध नहीं है। यदि वह उपलब्ध भी की जाती है तो केवल 24 घंटों में 2–3 घंटों के लिए और कभी-कभी बिल्कुल नहीं। वर्षा के अभाव में अब तक बोई गई खरीफ की अधिकांश फसल नष्ट हो गई है।

गांव में वातावरण बड़ा सौमनस्यपूर्ण है, छुआछूत भी नाम मात्र को है, गांव का स्कूल बड़े सुचारू रूप से चल रहा है। सामाजिक हित और विकास के कार्यो में सभी लोग बड़ी दिलचस्पी से भाग लेते हैं।

महेन्द्र

गांव माताजी बड़ायला विकास की राह पर

विकास-खंड पिपलोदा, जिला रतलाम का गांव माताजी बड़ायला बड़ी तेजी से प्रगति के पथ पर अग्रसर होता जा रहा है। इसका प्रमुख कारण है ग्रामीणों की एकता एवं शासन द्वारा दी गई सुविधाओं का समुचित उपयोग। जावरा-पिपलोदा मार्ग से साढ़े तीन किलोमीटर की दूरी पर स्थित गांव की आबादी लगभग ढ़ाई हजार है। मुख्य मार्गो से पक्की सड़क से जुड़ जाने एवं गांव में विद्युत की आपूर्ति के कारण ही गांव ने सामाजिक आर्थिक, शैक्षणिक आदि दिशाओं में उन्नति का एक नया कीर्तिमान स्थापित किया है जो अनुकरणीय है। गांव की उन्नति का बहुत कुछ श्रेय

सरपंच श्री चतुर्भुज जी को है जो पिछले बारह वर्षों से सरपंच के पद पर हैं एवं बहुत ही ईमानदार, कर्त्तव्यपरायण तथा परिश्रमी व्यक्ति हैं।

कृषि विकास में ग्रामीणों की अत्यन्त रुचि है। कृषक कृषि में आधुनिकतम उपकरणों और साधनों का उपयोग कर रहे हैं। शासकीय मदद से गांव में लगभग सौ कुएं खुदवाए गए हैं जिसमें विद्युत पम्प लगाए गए हैं। सरकारी अनुदान से गांव में पन्द्रह हजार रुपये लागत का एक खाद का गोदाम निर्मित कराया गया है जिसके द्वारा आसपास के लगभग दस-बारह गांवों को खाद वितरित की जाती है। गांव के तेरह कृषकों ने सरकार से कर्ज लेकर ट्रैक्टर खरीदा है। गांव में 50 सीमांत कृषकों को अनुदान दिलाया गया है जिससे कि वे पशु खरीदकर अपना स्वयं का रोजगार करके स्वावलम्बी बन सके हैं।

बीस सूत्री कार्यक्रम का क्रियान्वयन भी गांव में तेजी से हुआ है। लगभग 150 हेक्टेयर भूमि भूमिहीनों को वितरित की गई है। आवास योजना के अन्तर्गत 50 लोगों को पक्के आवास बना कर दिए गए हैं। गांव का गरीब से गरीब व्यक्ति भी खाने-पीने की हालत में है। गांव में लगभग 70 प्रतिशत लोग परिवार नियोजन के लिए आपरेशन करा चुके हैं। परिवार कल्याण में अग्रणी होने से 1981 में ग्राम पंचायत को दस हजार रुपये का पुरस्कार प्राप्त हुआ जिसका उपयोग गांव में पक्की नालियां बनवाने में किया गया है। जलप्रदाय के लिए नलकूप का शुभारम्भ मध्य प्रदेश के कृषि मंत्री द्वारा किया जा चुका है और थोड़े ही दिनों में हर घर में पीने का पानी पहुंचाया जा सकेगा।

गांव में लगभग 60 प्रतिशत लोग शिक्षित हैं। पंचायत द्वारा रात्रि में प्रौढ़-शिक्षा का कार्यक्रम चलाया जा रहा है। पंचायत भवन में बच्चों के लिए बालवाड़ी चलाई जा रही है। लड़कियों के लिए अलग से प्राथमिक विद्यालय है जिसमें दो अध्यापिकाएं हैं। गांव में परिवार-कल्याण का एक उपकेन्द्र है और नई स्वास्थ्य नीति के अन्तर्गत एक जन-स्वास्थ्य रक्षक भी नियुक्त है। गांव में सिविल डिस्पेंसरी की स्वीकृति प्राप्त हो चुकी है, लेकिन शासन द्वारा अभी भवन निर्माण का कार्य प्रारम्भ नहीं हुआ है। गांव का एक व्यक्ति अपने मकान के दो कमरे भवन बनने तक डिस्पेंसरी चलाने हेतु देने के लिए तैयार है। गांव की गलियों में खरंजा लगा हुआ है। सन् 1967 से गलियों में विद्युत लगाई गई है।

गांव में दहेज प्रथा की बुराई का अन्त कर दिया गया है। मृत्यु भोज बन्द कर दिया गया है। बाल-विवाह पर प्रतिबन्ध लगाया जा चुका है। बाल-विवाह होने की स्थिति में पंचायत द्वारा उचित दण्ड की व्यवस्था है। गांव के लोग किसी भी समस्या के समाधान के लिए न्यायालयों में नहीं जाते हैं। झगड़े का निपटारा पंचायत के माध्यम से ही कर लिया जाता है। छुआ-छूत की भावना समाप्त हो चुकी है। मंदिरों के दरवाजे सभी जातियों के लिए खुले हैं। गांव के प्रमुख लोग गांव के सर्वांगीण विकास के लिए सतत् प्रयत्नशील हैं।

शिक्षक ने गाँव का कायाकल्प किया

हमारे भारतीय समाज में शिक्षक का प्राचीन काल से ही विशेष स्थान तथा सामाजिक उत्थान में भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है। वर्तमान में जहां एक ओर सामाजिक परिवर्तन के फलस्वरूप शिक्षक के पद की गरिमा का अवमूल्यन हुआ है वहीं दूसरी ओर ऐसे शिक्षक भी हैं जो इन बातों की चिन्ता न करते हुए अपनी निःस्वार्थ सेवाओं से समाज के उत्थान में जी जान से लगे हुए हैं। ऐसे ही एक शिक्षक हैं आदिवासी गांव कानपुरी, विकासखण्ड निवासी, जिला खरगोन के श्री यशवन्त रामचंद्र शर्मा।

श्री शर्मा पिछले एक वर्ष से गांव कानपुरी प्राथमिक विद्यालय में पदोन्नत होने के पश्चात् प्रधानाध्यापक हैं। जब वे गांव में पदस्थ हुए तो स्कूल में विद्यार्थियों की कुल संख्या 4 थी जिस के लिए एक शिक्षक की व्यवस्था थी। श्री शर्मा के थोड़े दिनों के प्रयास के फलस्वरूप स्कूल में विद्यार्थियों की संख्या बढ़कर 93 और अध्यापकों की संख्या 3 हो गई। उनके दो अन्य सहयोगी शिक्षक भी गांव में ही निवास करते हैं। श्री शर्मा का मुख्य योगदान आदिवासी विद्यार्थियों की शिक्षा के लिए है। उन्होंने गांव के ही एक मकान में व्यक्तिगत स्तर पर छात्रावास प्रारम्भ किया जिसमें 25 विद्यार्थी नियमित रूप से रहते हैं। छात्रावास का पूरा व्यय गांव की जनता से फसल के समय खाद्यान्न के रूप में एकत्र किया जाता है। छात्रावास को सुचारु रूप से चलाने के लिए गांव के प्रमुख लोगों की एक समिति भी बनाई गई है। गांव के आस-पास के चार किलोमीटर क्षेत्र के बच्चे छात्रावास में ही निवास करते हैं।

श्री शर्मा के अन्य क्षेत्र में किए गए कार्य भी कम उल्लेखनीय नहीं हैं। गांव में पदस्थ होने के बाद पहली बरसात में उन्होंने स्कूल, मदान और गांव में 200 पौधे मंगाकर वृक्षारोपण कराए जिनकी देख-भाल की जिम्मेदारी ग्रामीण व्यक्तियों को सौंपी। विकास खण्ड निवास से गांव का पुरी तक 6 किलोमीटर का कच्चा रास्ता श्रमदान द्वारा आरम्भ कराया। गांव में कृषि विकास हेतु लघु एवं सीमान्त कृषकों का सर्वेक्षण करा कर सरकार द्वारा प्रारम्भ की गई योजनाओं का लाभ दिलवाया। गांव में मद्यपान की आदत कम थी फिर भी जो लोग पीते थे उन्होंने श्री शर्मा की प्रेरणा से मद्यपान त्याग दिया। गांव में 12 योग्य दम्पतियों के परिवार कल्याण आपरेशन करवाए।

कानपुरी से पूर्व श्री शर्मा लगातार सेंधवा में 18 वर्षों तक शिक्षक रहे हैं। उनकी सेवाओं के कारण ही लायन्स क्लब, सेंधवा द्वारा सन् 1975 में उनका नागरिक अभिनन्दन किया गया था। श्री शर्मा का नाम दो बार राष्ट्रपति पुरस्कार हेतु भी प्रस्तावित हो चुका है। □

डॉ० राम,
क्षेत्रीय प्रचार अधिकारी
उज्जैन (मध्य प्रदेश)

कच्छ में पेय-जल समस्या*

अखिलेश्वर तिवारी

भारत के पश्चिमी भाग में आज भी ईमानदारी का ताज पहने अपनी पुरानी सभ्यताओं को जीवित रखने वाला कच्छ पेय-जल समस्या से संकटग्रस्त है। इस भू-खंड पर ईमानदारी का जितना व्यापक साम्राज्य है उतनी ही जटिल पेय-जल समस्या। अभी भी यहां गांवों की अधिकांश जनसंख्या पेयजल के लिए तालाबों, नालों या नदियों पर निर्भर है। गर्मी के मौसम में इन तालाबों या नालों का पानी गंदला हो जाता है तथा उसमें प्रदूषित पदार्थों की मात्रा बढ़ जाती है। इन्हीं तालावों में जहां एक ओर बर्तन की सफाई एवं कपड़े की धुलाई होती है वहीं ये जानवरों के लिए जलाशय का भी काम करते हैं। कोई-कोई तालाब तो गंदगी की खान मालूम पड़ता है तथा उसमें शैवाल, फफूंद एवं अन्य अवांछनीय हानिकर वनस्पतियों का जाल बिछा रहता है। मगर जीवन-निर्वाह के लिए बेसहारा ग्रामीणों को इन जलाशयों का सहारा लेना ही पड़ता है।

1971 की जनगणना के अनुसार कच्छ जिले में करीब 900 गांव हैं जहां की कुल जनसंख्या 8,49,769 है जिसमें से 6,35,315 जनसंख्या गांवों में निवास करती है तथा शेष 2,14,454 शहरों में। कुल जनसंख्या में 4,27,512 महिलाएं हैं तथा 4,22,257 पुरुष हैं। इस जिले के ग्रामीण क्षेत्रों में सेक्स अनुपात सेक्स अनुपात–1,000 पुरुष पर औरतों की जनसंख्या 1,037 है मगर शहरी क्षेत्रों में यह 944 है। गुजरात राज्य की सिर्फ 3.18 प्रतिशत जनसंख्या इस जिले में निवास करती है जबकि इसका क्षेत्रफल गुजरात के पूरे क्षेत्रफल का 23.27 प्रतिशत है। गुजरात के जिलों में क्षेत्रफल के दृष्टिकोण से यह प्रथम स्थान रखता है लेकिन जनसंख्या के आधार पर 15 वां स्थान। अक्तूबर 1979 एवं दिसम्बर 1979 के बीच इस जिले के ग्रामीण क्षेत्रों में 3054 बच्चों के जन्म होने का पंजीकरण हुआ तथा शहरी क्षेत्रों में 1153 बच्चों का। इस अवधि में ग्रामीण क्षेत्रों में 694 व्यक्ति मरे तथा शहरी क्षेत्रों में 181 व्यक्ति। [Quarterly Bull. Eco & Stat., Govt. of Gujarat, Vol XX, No 2, April-June 1980 के आधार पर]।

कच्छ जिले में मौसम बहुत परिवर्तनशील रहता है। कभी-कभी सुबह जगने पर घने बादल दिखाई पड़ते हैं मगर एक-दो घंटे में ही आकाश निर्मेघ हो जाता है। सम्भवतः यहां का मौसम भारत के उत्तर-पूर्वी भाग पर निर्भर करता है। यहां वर्षा की मात्रा भी अति परिवर्तनशील होती है। जैसे 1974 में यहां औसतन वर्षा (Rain fall) सिर्फ 101.0 मि० मी० हुई थी लेकिन 1979 में 840.1 मि० मी० एवं 1980 में 553.0 मि० मी०। गर्मी के मौसम में अभी भी यहां की 25 प्रतिशत जनसंख्या पेयजल के लिए तालाबों या नालों पर निर्भर करती है जबकि 60 प्रतिशत जनसंख्या कुओं तथा टैप के जल पर। शेष जनसंख्या अन्य स्रोतों का सहारा लेती है। अन्य मौसमों में यहां की 40 प्रतिशत जनसंख्या तालाबों या नालों पर निर्भर करती है तथा सिर्फ 50 प्रतिशत कुओं एवं टैप के पानी पर। बाकी जनसंख्या को अन्य स्रोतों का सहारा लेना पड़ता है।

कच्छ जिले के विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा का पूर्णतया अभाव है। बच्चे प्रारम्भ से ही पशुओं की सेवा का कार्य संभालने लगते हैं तथा बकरी, भेड़ों एवं ऊंटों के साथ अपना जीवन प्रारम्भ करते हैं। मध्याह्न के लिए वे साथ में थोड़ा कलेवा रखते हैं तथा छोटे-छोटे गड्ढों में एकत्र जल का स्वयं पान करते हैं तथा अपने जानवरों को भी पिलाते हैं। पहाड़ियों के आस-पास प्रायः यह देखा गया है कि दोपहर में चरवाहे अपने जानवरों को लाकर गड्ढों में इकट्ठे जल को पिलाने के बाद स्वयं के लिए भी उसमें से थोड़ा जल किसी पात्र में ले लेते हैं। जबकि वह पानी पहले से ही प्रदूषित रहता है तथा जानवरों के पीने एवं उसमें प्रवेश करने के कारण वह थोड़ा और गंदला एवं प्रदूषित हो जाता है। मगर अशिक्षा से जकड़े वे ग्रामीण चरवाहे उसी जल को पीते हैं।

कच्छ जिले के गांवों के समीपवर्ती जलाशयों में यह देखा गया है कि पूरे गांव के बर्तनों की सफाई, कपड़ों की धुलाई, स्नान, जानवरों की धुलाई एवं जल से संबंधित सभी अन्य कार्य तालाब के जल में सम्पन्न होते हैं। जानवरों के प्रवेश से पानी गंदला हो जाता है, विभिन्न प्रकार के जीवाणु-कीटाणुओं का तथा अन्य प्रकार की गंदगी का भी उसमें समावेश हो जाता है। अगर बीमारी-युक्त (विशेषकर संक्रामक रोगों से ग्रसित जानवर उसमें प्रवेश करते हैं तो पानी और प्रदूषित हो जाता है। उस जल को पीने से जानवरों का दूध एवं मांस भी प्रभावित होता है। उस जल के पीने से मानव में अन्य प्रकार की संक्रामक बीमारियों का भय बना रहता है। स्नान करने से एवं बर्तन तथा कपड़ों की सफाई से उस तालाब में गंदगी बढ़ती है। लेकिन जल का अन्य स्रोत न होने के कारण सभी कार्यों के लिए लोग उसी पर निर्भर रहते हैं। पानी के अभाव में ग्रामीण क्षेत्रों के लोग प्रतिदिन स्नान भी नहीं करते। अतः स्वास्थ्य बिगड़ने का यह स्वयं एक कारण है। पानी की कमी के कारण ही शायद यहां की स्त्रियां काला वस्त्र पहनती हैं जिससे वह जल्दी गंदा नहीं मालूम होता तथा उसकी जल्दी-जल्दी सफाई नहीं करनी पड़ती। प्रदूषित पदार्थों से युक्त जल द्वारा बर्तनों की सफाई की जाती है जिससे बर्तनों में भी गंदगी चली जाती है तथा उनमें भोज्य पदार्थों के रखने पर वे भी प्रदूषित हो जाते हैं जो मानव के लिए हानिप्रद होता है।

अतः इस जिले में पेय-जल की समस्या का समाधान आवश्यक है। तथा तत्काल ग्रामीणों को इतनी शिक्षा दी जानी चाहिए जिससे वे अपने आस-पास के तालाबों को स्वच्छ रखें एवं उसे और प्रदूषित एवं गन्दा होने से बचाएं। बर्तनों एवं कपड़ों की सफाई पेय-जल स्रोत के रूप में उपयोग आने वाले तालाबों में न करें बल्कि उसमें से पानी निकालकर थोड़ी दूरी पर लगाकर करें। पानी को उबालकर पिएं एवं सदैव उन तालाबों में कीटनाशक दवाइयों के छिड़गाव पर ध्यान दें। □

शोध-छात्र (भू-विज्ञान)
69, अय्यर छात्रावास काशी हिन्दू
विश्वविद्यालय, वाराणसी-221005

केन्द्र के समाचार

सूखाग्रस्त क्षेत्र के लिए 40 करोड़ रुपये

केन्द्र ने 1982-83 के लिए सूखाग्रस्त क्षेत्र कार्यक्रम के लिए 40 करोड़ रुपये की राशि आबंटित की है। यह कार्यक्रम 13 राज्यों के 74 जिलों के 557 प्रखण्डों में शुरु किया जाएगा। प्रत्येक प्रखण्ड को केन्द्र और राज्यों द्वारा बराबर-बराबर 15 लाख रुपये की राशि मुहैया कराई जाएगी। छठी पंचवर्षीय योजना (1980-85) में इस कार्यक्रम के लिये 175 करोड़ रुपये की राशि रखी गई है।

सूखाग्रस्त क्षेत्र और मरुस्थल विकास कार्यक्रमों की समीक्षा करने के लिए सरकार ने एक कार्यदल गठित किया था। कार्यदल ने सुझाव दिया था कि इस कार्यक्रम को 511 प्रखण्डों में शुरू किया जाए परन्तु सरकार ने 557 प्रखण्डों में इस कार्यक्रम को जारी रखने का निर्णय किया है।

गांवों मे पेयजल

विभिन्न राज्यों से प्राप्त सूचना के अनुसार चालू वित्त वर्ष के प्रथम तीन महीनों के दौरान 1,729 समस्याग्रस्त गांवों में पीने के पानी की व्यवस्था की गई। समूचे देश में चालू वर्ष में कुल 34,794 समस्याग्रस्त गांवों में पीने के पानी की व्यवस्था करने का लक्ष्य है।

जिन राज्यों ने इस कार्यक्रम के क्रियान्वयन में अच्छा कार्य किया है उनमें कर्नाटक राज्य सबसे आगे है। कर्नाटक ने 1,026 (34.2 प्रतिशत) गांवों में पेयजल उपलब्ध कराया। कर्नाटक का लक्ष्य 3,000 गांवों में पीने के पानी की व्यवस्था करना है। जिन अन्य राज्यों ने इस दिशा में अच्छी प्रगति की है उनके नाम इस प्रकार हैं :—पंजाब (28.6 प्रतिशत) राजस्थान (26.7 प्रतिशत), बिहार (22.3 प्रतिशत), मध्य प्रदेश (17.8 प्रतिशत) और हरियाणा (16 प्रतिशत)। इन राज्यों ने कुल 2,283 गांवों में पेयजल उपलब्ध कराया। तमिलनाडु ने 455 (15.2 प्रतिशत) गांवों के लिए पेयजल की व्यवस्था की जबकि इसका लक्ष्य 3,000 गांवों का था।

अखिल भारतीय स्तर पर भी इस दिशा में उल्लेखनीय प्रगति हुई और निर्धारित लक्ष्य 15 प्रतिशत से अधिक समस्याग्रस्त गांवों को पेयजल उपलब्ध कराया गया है।

आदिवासी क्षेत्रों में वनों का विकास

सरकार ने वन क्षेत्र में रहने वाले आदिवासियों के निर्वाह के लिए देश के आदिवासी क्षेत्रों में वनों का विकास करने का निर्णय लिया है। उनको लाभ पहुंचाने के लिए कुछ कार्यक्रमों को लागू करने का निर्णय किया गया है :—ठेकेदारों को पेड़ों की कटाई के कार्य से हटाना; आदिवासियों को लघु वन उत्पादन के संग्रह और विपणन संबंधी कार्यों में सक्रिय रूप से लगाना तथा वन-श्रमिकों द्वारा काश्त की जाने वाली भूमि का वंशागत किन्तु अहस्तान्तरणीय अधिकार प्रदान करना।

उपर्युक्त मामले में की गई प्रगति इस प्रकार है :—असम को छोड़ कर सभी राज्यों ने कटाई सम्बन्धी कार्य सहकारी समितियों के माध्यम से अथवा विभागीय तौर पर शुरू करके ठेकेदारों को हटाने की दिशा में कार्यवाही की है; असम, गुजरात और पश्चिम बंगाल को छोड़कर सभी राज्यों ने इन कार्यक्रमों को लागू करने की कार्यवाही शुरू कर दी है। इसके अलावा आदिवासियों के लाभ के लिए आदिवासी बहुल क्षेत्रों में आदिवासी उप-योजना के अन्तर्गत विशेष कार्यक्रम क्रियान्वित किए जाते हैं।

योजक सड़कें

छठी पंचवर्षीय योजना (1980-85) प्रलेख में यह परिकल्पना की गई है कि 1500 से ऊपर की जनसंख्या वाले सभी गांवों तथा 1000 से 1500 के बीच की जनसंख्या वाले 50 प्रतिशत गांवों को न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम के भाग के रूप में 1990 तक सभी मौसमों में चलने वाली सड़कों से जोड़ा जाएगा और इस कार्यक्रम के लक्ष्य का लगभग 50 प्रतिशत 1985 तक पूरा कर लिया जाएगा।

ग्रामीण आवास योजना

ग्रामीण आवास के लिए न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रमों में छठी पंचवर्षीय योजना में ग्रामीण भूमिहीन श्रमिकों, के लिए आवास-स्थल व निर्माण सहायता के प्रावधान पर उच्च प्राथमिकता दी गई है। छठी पंचवर्षीय योजना में 1985 तक 36 लाख परिवारों को निर्माण सहायता देने का उद्देश्य है। 31-3-1982 तक लगभग 18.70 लाख परिवारों के लाभार्थ निर्माण सहायता दे दी गई है।

अनाज के नए गोदाम

पंजाब और हरियाणा में अनाज के गोदामों के निर्माण की स्वीकृति दे दी गई है।

[शेष पृष्ठ 44 पर]

साहित्य समीक्षा

हम सब हिन्दुस्तानी : लेखक : प्रकाश पण्डित, प्रकाशक : राजपाल एण्ड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली, पृष्ठ संख्या : 44, मूल्य : 4 रुपये ।

भारत की जनसंख्या का अधिकांश भाग अभी तक पढ़ने-लिखने से वंचित है जिसके फलस्वरूप हम ऊंच-नीच, जात-पांत, साम्प्रदायिकता जैसी बुराई पर अभी तक विजय प्राप्त नहीं कर सके हैं । राष्ट्रीय भावात्मक एकता स्थापित करने के लिए हमें जनता में प्रचार करना होगा जिसके लिए प्रौढ़ शिक्षा का प्रचार आवश्यक है। बड़े-बड़े प्रकाशकों ने भी प्रौढ़ शिक्षा पर साहित्य का प्रकाशन आरम्भ कर दिया है किन्तु इस बात पर कम ही ध्यान दिया गया है कि लेखकों को प्रौढ़ शिक्षा का अनुभव भी होना चाहिए । मनोविज्ञान एवं भाषा-स्तर पर दृष्टि रखे बिना शिक्षा के लिए अच्छी किताबें तैयार नहीं की जा सकतीं । इस आलोच्य पुस्तिका में हिन्दू-मुस्लिम मेल-मिलाप पर जोर दिया गया है। एक पंडित जी और एक मिर्जा जी की मित्रता पर आधारित इस पुस्तक में एक दूसरे के प्रति सद्भाव और बलिदान को दर्शाया गया है। कथा-वस्तु रोचक है परन्तु कहीं-कहीं भाषा बड़ी अटपटी है।

उदाहरणार्थ, 'कुछ खौफे खुदा नहीं इस शख्स को' (पृष्ठ 12) के स्थान पर यूं भी लिखा जा सकता था कि 'कुछ खुदा का डर ही नहीं इस आदमी को' । 'लोहोला बिला कुब्बत' को लाहौल बिला कुब्बत' लिखा गया है (पृष्ठ 11) । जो सही नहीं है। मूल्य अधिक है । प्रूफ की अशुद्धियां नगण्य हैं । राष्ट्रीय एकता की दृष्टि से पुस्तक संग्रहणीय और पठनीय है। □

बदली विद्यार्थी,
बी-58, पंडारा रोड,
नई दिल्ली-110003

'उत्तर प्रदेश' आदिवासी विशेषांक : सम्पादक : कौशल कुमार राय, प्रकाशक : निदेशक, सूचना एवं जन सम्पर्क विभाग, लखनऊ, उ. प्र., पृष्ठ संख्या : 80, मूल्य : एक प्रति–एक रुपया, वार्षिक–10 रुपये ।

यू० पी० सरकार द्वारा प्रकाशित मासिक पत्रिका 'उत्तर प्रदेश' का हर विशेषांक उच्च कोटि का होता है । हाल में जुलाई, मास का "आदिवासी विशेषांक" प्रकाशित हुआ है । इसमें आदिवासियों और जनजातियों जैसे:—थारू, भोटिया, शौका, बुक्सा, बनरौत, जौनसार, बाबर तथा ऐसी कई अन्य उपजातियों के सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है। यह विषय अब तक उपेक्षित-सा रहा है।

देश की आजादी के बाद ऐसे प्रयत्न किए गए जिससे आदिवासियों के जीवन और रहन-सहन में कुछ तबदीली आई है । उनके समाज के तौर तरीकों में समय के अनुरूप परिवर्तन भी हुआ है । यह विशेषांक इसी दिशा में एक सराहनीय प्रयत्न है।

इस विशेषांक में आदिवासियों के सामाजिक व आर्थिक पहलू तथा उनकी लोक कथाओं और सांस्कृतिक जीवन की झांकियां प्रस्तुत करने में गवेषणापूर्ण प्रामाणिक सामग्री प्रस्तुत की गई है। जनजातियों के लोक गीतों का भी उल्लेख किया गया है । इनमें जनजातियों की भावनाओं का चित्रण मिलता है। इस अंक के पढ़ने पर पता लगता है कि भारतीय संस्कृति की जड़ें समूचे देश में कितनी गहरी फैली हुई हैं। भारत एक बड़ा देश है। इसके हर सूबे का अपना सामाजिक परिवेश अभी तक सुरक्षित रहा है। इन्हीं विभिन्न सूबों की मिली-जुली संस्कृतियों के विकास के आधार पर ही हमारी राष्ट्रीय संस्कृति फली-फूली है।

आवश्यकता इस बात की है कि आदिवासियों और जन-जातियों की समस्याओं का हल निकालने के पहले हम अपने दृष्टिकोण को बदलें और उनके बीच जाकर उनकी ही भाषा में ऐसे लोगों के द्वारा पंचवर्षीय योजनाओं के बारे में प्रचार कराएं जो उन्हीं के समूह के हों, जिससे आदिवासियों के दिमाग में पंचवर्षीय योजना की सही तस्वीर सामने आ सके। तभी योजनाओं के विकास में वह हाथ बंटा सकेंगे । बहुत समय पहले पंडित जवाहरलाल नेहरू ने इस विषय में बड़े पते की बात कही थी । जनजातियों के रीति-रिवाज और सामाजिक मान्यताओं को धीमे-धीमे इस तरह बदला जाए, जिससे उनको यह महसूस न हो कि उनकी अपनी संस्कृति या रहन-सहन के तौर-तरीकों को उखाड़ा जा रहा है। जरूरत इस बात की है कि हम उन्हीं की भाषा में उन्हीं के मुखिया के जरिए उनके कल्याण की बातें उन तक पहुंचा सकें । □

डा० राम गोपाल चतुर्वेदी,
द्वारा : पं० बनारसी दास चतुर्वेदी,
चौबे मुहल्ला,
फिरोजाबाद, जिला आगरा।

जात-पांत अब पिछड़ी बात : लेखक : हंस राज रहबर, प्रकाशक : राजपाल एण्ड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली, पृष्ठ संख्या : 36, मूल्य : 4 रुपये ।

जात-पांत, छुआछूत आदि सामाजिक अभिशाप की ओर जन-साधारण का ध्यान आकर्षित करने के लिए ऐसी पुस्तिकाओं की आवश्यकता से इन्कार नहीं किया जा सकता किन्तु ऐसी किताबें लिखने के लिए मनोविज्ञान, भारतीय सामाजिक एवं आर्थिक जीवन आदि के भरपूर ज्ञान की आवश्यकता होती है जो पुस्तिका में दिखाई देता है । स्वतन्त्रता प्राप्ति के 35 वर्ष पश्चात भी जात-पांत, छुआछूत का कुचक्र चल रहा है। प्रस्तुत कहानी का सीसपाल चुनाव अभियान के सिलसिले में हरिजन बस्ती में गया किन्तु

बसंत राम हरिजन से हाथ मिलाने से उसे ग्लानि महसूस हुई। घर आकर उसने अपने उस हाथ को खूब धोया तभी उसे चैन आया। परन्तु आगे चलकर ऐसा अवसर आया कि सीसपाल को अस्पताल में दाखिल होना पड़ा। तब उसे महसूस हुआ कि बसंत राम हरिजन उसकी जैसी ही आत्मा रखने वाला व्यक्ति है। वह अच्छे हृदय-मस्तिष्क का मनुष्य है। उसने सीसपाल का दिल जीत लिया और अब वह यह मससूस करने लगा कि छुआछूत एक अभिशाप है। पुस्तिका की भाषा कहीं-कहीं ऊबड़-खाबड़ है। । पृष्ठ संख्या को देखते हुए पुस्तिका का मूल्य अधिक है। प्रूफ की अशुद्धियां नगण्य हैं। एकता की दृष्टि से पुस्तिका संग्रहणीय तथा पठनीय है। ☐

राजदुलारी,
एफ-244,
डी० डी० ए० फ्लैट्स,
(ततारपुर) राजौरी गार्डन,
नई दिल्ली

भारत (वार्षिक संदर्भ ग्रंथ) 1981 : प्रकाशक : निदेशक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या : 712 तथा तीन मानचित्र, मूल्य : 25 रु०।

सूचना और प्रसारण मंत्रालय के 'गवेषणा और संदर्भ विभाग' द्वारा संकलित 'भारत (वार्षिक संदर्भ ग्रन्थ) 1981' एकमात्र आधिकारिक महत्वपूर्ण प्रकाशन है। इस ग्रन्थ में शिक्षा, स्वास्थ्य, समाज कल्याण, परिवहन, संचार, विज्ञान और प्रौद्योगिकी, ग्राम पुनर्निर्माण, श्रम, आवास, उद्योग, वाणिज्य, कृषि, बिजली उत्पाद और राष्ट्रीय जीवन के अन्य क्षेत्रों में हुई प्रगति के विषय में बड़ी उपादेय जानकारी और आंकड़े दिए गए हैं। यह ग्रन्थ पत्रकारों, अध्यापकों, छात्रों, शोधकर्त्ताओं, अधिकारियों, शिक्षा शास्त्रियों, व्यवसायिकों तथा शिक्षा संस्थाओं और पुस्तकालयों के लिए बड़े काम की वस्तु है। ग्रन्थ का कलेवर, मानचित्रों और चित्रों से काफी सुन्दर बन पड़ा है। ग्रन्थ की भाषा बड़ी सरल, सुबोध परिष्कृत और प्रमार्जित है। ग्रन्थ में जो जानकारी दी गई है वह बड़े ही सुबोध तरीके से दी गई है। पाठक एक नजर में ही सारणियों के माध्यम से अभीष्ट जानकारी प्राप्त कर सकता है तथा देश की प्रगति का लेखा-जोखा जान सकता है। ग्रन्थ के आवरण पृष्ठ आकर्षक हैं और प्रूफ की अशुद्धियां नगण्य हैं। वैसे तो ग्रन्थ का हिन्दी संस्करण अंग्रेजी संस्करण से अनुदित है परन्तु पाठक भाषा में मौलिकता का रसस्वादन कर सकता है। गेट-अप और मेक-अप की दृष्टि से ग्रन्थ का कलेवर बहुत अच्छा बन पड़ा है। ☐

श्रीमती मुन्नी देवी

जागृति और खादी ग्रामोद्योग वार्षिकांक 1981 : सम्पादक : नवरंग प्रसाद जयसवाल, प्रकाशक : खादी ग्रामोद्योग कमीशन, ग्रामोदय इरला रोड, विले पार्ले, बम्बई-400056, पृष्ठ संख्या : 112, मूल्य : वार्षिक—दस रुपये, मासिक – एक रुपया।

ग्रामीण जीवन और अर्थशास्त्र के विषय पर इन पत्रिकाओं ने सभी पहलुओं को विस्तार से लोगों के सामने प्रस्तुत किया हैं। भारत ग्रामों में बसता है। ग्रामीणों का जीवन किस प्रकार से पूर्ण विकसित होकर देश की आर्थिक व्यवस्था को समुन्नत बनाकर अपना कर्त्तव्य निभा सकता है इसका बड़ी सुन्दरता से इन पत्रिकाओं में विवेचन पढ़ने को मिलता है।

योजना मंत्री श्री एस० वी० चव्हाण ने अपने सारगर्भित लेख "वर्त्तमान केन्द्रीय सरकार, ग्रामीण तथा राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था" में ग्राम्य विकास से संबंधित सभी नीतियों तथा कार्यक्रमों को बड़े सुन्दर ढंग से पाठकों एवं ग्राम-विकास-प्रेमियों के सम्मुख सरल भाषा में प्रस्तुत किया है। ग्राम-स्तरीय कार्य-कर्त्ताओं को इस बारे में प्रशिक्षण दिलाने हेतु सरकार ने क्या व्यवस्था की है इस प्रश्न पर काफी रोशनी डाली गई है।

श्री मनुभाई पटेल ने अपने लेख में ग्रामीण युवकों के प्रशिक्षण एवं स्वरोजगार द्वारा ग्रामीण बेरोजगारी को कम करने की जरूरत पर बल दिया है। इसमें ग्रामीण युवकों को स्वरोजगार चुनकर अपनी-अपनी राज्य सरकारों के संसाधनों का उपयोग कर देश की प्रगति में भागीदार बनने की प्रवृत्ति को जाग्रत करने की लाभपूर्ण जानकारी दी गई है।

श्री वी० पद्मानाभन के लेख "ग्रामीण विकास के नए रूप" में विकास प्रक्रिया को अधिक कारगर बनाने हेतु सरकारी एवं गैरसरकारी अभिकरणों के अच्छे संबंधों पर बल देकर वर्तमान कार्यप्रणाली को सक्षम बनाया गया है।

पत्रिकाओं के सम्पादक श्री जयसवाल ने कृषि श्रमिकों के लिए भी उन सुविधाओं को सुलभ कराने पर बल दिया है जो संगठित कारखानों में कार्य करने वाले श्रमिकों के कल्याणार्थ दी जाती हैं। स्वरोजगार के क्षेत्र में वर्त्तमान असंगठित तथा वैयक्तिक स्वरूप की कमजोरी को दूर करने की आवश्यकता को उन्होंने काफी उजागर किया है।

श्री एस०के० अवस्थी ने विकास कार्यक्रम के संचालन में जो बाधाएं मार्ग को अवरुद्ध करती हैं उन्हें दूर करने की आवश्यकता तथा पर्याप्त संशोधन के संबंध में पूरा चित्र प्रस्तुत किया है। उनका कथन है कि वर्तमान मुद्रास्फीति की स्थिति निरंतर बढ़ती हुई जनसंख्या के परिप्रेक्ष्य में संसाधन न जुटा पाने के कारण देश की अर्थव्यवस्था के लिए एक बड़ा खतरा हो सकती है। इस गम्भीर चुनौती की ओर नियोजकों का ध्यान जाना आवश्यक है।

पत्रिका ग्रामीण अर्थशास्त्र, ग्रामोद्योगों एवं कृषि मजदूरों की वर्तमान आर्थिक दशा के बारे में सही चित्र प्रस्तुत करती है। पत्रिका खादी ग्रामोद्योग आयोग द्वारा इस दिशा में चलाए जा रहे विभिन्न कार्यक्रमों एवं कार्यप्रणाली संबंधी अधिकारपूर्ण जानकारी देती है। पत्रिका में लेखों की भाषा क्लिष्ट तथा नीरस सी है। पाठक की रुचि लेखों को पढ़ने में अधिक नहीं रह पाती। आवरण पृष्ठ भी अधिक आकर्षक नहीं लगता। लेखों का चयन ग्रामीण विकास के भिन्न-भिन्न पहलुओं में भिन्न-भिन्न स्तम्भों के अन्तर्गत रखा जाए तो पाठक अपनी रुचि के लेखों को एकाग्रता से पढ़ने में दिलचस्पी ले सकेगा। ☐

कृष्ण गोपाल
7-जन्तर मन्तर, नई दिल्ली

स्वरोजगार के लिए ग्रामीण युवकों को प्रशिक्षण

सत्यदेव नारायण

देश के ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी की समस्या को हल करने के लिए सरकार की ओर से जो उपाय किए गए हैं, उनमें "ट्राइसेम" योजना का खास महत्व है। पन्द्रह अगस्त, 1979 से प्रारम्भ की गई इस राष्ट्रीय योजना का अंग्रेजी में पूरा नाम है "ट्रेनिंग आफ रूरल यूथ फार सेल्फ इंप्लायमेंट"। "ट्राइसेम" शब्द इसी का संक्षिप्त तथा प्रचलित रूप है। इस योजना के अन्तर्गत ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले 18 से 35 वर्ष की उम्र के युवकों तथा युवतियों को किसी न किसी ऐसे रोजगार के लिए तकनीकी प्रशिक्षण देने की व्यवस्था है जिससे वे देहात में रहते हुए भी उस रोजगार द्वारा धनोपार्जन कर सकें तथा भरसक स्वावलम्बी हो जाएं। इससे उनका जीवन स्तर ऊपर उठ सकेगा और नौकरी के लिए देहात छोड़कर शहरों की ओर भागने की तथा दर-दर की ठोकर खाने की जरूरत नहीं रहेगी। इस योजना के लिए केन्द्र की ओर से राज्य सरकारों को आवश्यक धनराशि दी जाती है और प्रशिक्षण की व्यवस्था करने का दायित्व भी राज्य सरकारों का ही है। यही कोशिश रहती है कि प्रशिक्षणार्थियों में से एक तिहाई संख्या लड़कियों की रहे।

प्रशिक्षण पाठ्यक्रम में भर्ती पाने के लिए आवश्यक शर्तें हैं : वह व्यक्ति स्थायी रूप से गांव में रहने वाला हो और या तो छोटे या सीमान्त अर्थात् बहुत छोटे किसान के परिवार का हो या भूमिहीन मजदूर हो या बढ़ई, लुहार आदि ग्रामीण क्षेत्रों के तकनीकी तबके का हो या ऐसे परिवार का हो जिसकी प्रति व्यक्ति मासिक आमदनी 62 रुपये से अधिक न हो। देहात में रहते हुए भी सम्पन्न परिवार के व्यक्ति को इस योजना में स्वीकार नहीं किया जाएगा।

प्रायः एक परिवार के एक से अधिक व्यक्ति इस प्रशिक्षण में भर्ती नहीं किए जाते। अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों को प्रशिक्षण पाठ्यक्रम में प्राथमिकता दी जाती है। भर्ती पाने लिए कोई शैक्षणिक डिग्री या डिप्लोमा या सर्टिफिकेट होना आवश्यक नहीं है। वैसे विभिन्न राज्यों ने आवश्यकतानुसार अपने-अपने राज्य में अलग-अलग नियम बनाए हैं।

स्मरण रहे कि इस प्रशिक्षण का ध्येय यह नहीं है कि व्यक्ति किसी संस्थान में नौकरी पाने के योग्य हो जाए। पाठ्यक्रम के अंत में प्रशिक्षणार्थी को कोई सर्टिफिकेट या डिप्लोमा नहीं दिया जाता। इस योजना का ध्येय व्यक्ति को इस योग्य बनाना है कि वह अपने हाथ से काम करके जीविका कमा सके। जो लोग हाथों से काम करने से कतराते हैं और कुर्सी मेज वाली नौकरी की कामना रखते हैं उनके लिए यह योजना लाभदाई नहीं है। पर जो अपने हाथ से काम करने के लिए तैयार हैं, उनका इन तीन वर्षों में अनुभव बहुत अच्छा हुआ है। उनकी आमदनी भी बढ़ी है और कार्यक्षमता भी, जिससे उनमें नया आत्मविश्वास जमा है। बढ़ईगीरी, लुहारगीरी या मिट्टी के बर्तन बनाने जैसे धंधों में लगे ग्रामीण परिवारों के लोग भी इन्हीं विषयों में प्रशिक्षण पाने के बाद पुरानी पीढ़ी के लोगों की अपेक्षा उन्हीं

यही तो कर्मयोग है।

कामों में कहीं अधिक दक्ष और सफल सिद्ध हो रहे हैं। कारण स्पष्ट है परम्परावादी लोग अभी तक वही तकनीकें काम में ला रहे हैं जो वंश-परम्परा में उन्हें विरासत में मिली हैं। पिछले कुछ दशकों और वर्षों में प्रायः हर क्षेत्र में जो आश्चर्यजनक तकनीकी प्रगति हुई है, उससे वे लोग अनभिज्ञ हैं। उधर, इन पाठ्यक्रमों से प्रशिक्षणार्थियों को नई तकनीकों की जानकारी मिलती है जिससे उतने ही समय में वे पुरानी तकनीक इस्तेमाल करने वालों को अपेक्षा अधिक उत्पादन करते हैं।

स्पष्ट है कि किस विशिष्ट विद्या से प्रशिक्षण लेना ठीक होगा, इस पर बहुत बारीकी से विचार करने की आवश्यकता है। यदि ऐसा प्रशिक्षण ले लिया जिसमें उत्पादन की जाने वाली चीज की आसपास के इलाके या बाजार में मांग नहीं हो या उसके लिए कच्चे माल की आसपास के इलाके से मिलने में कठिनाई हो तो उस प्रशिक्षण से लाभ नहीं होगा। इन विभिन्न पहलुओं पर विचार करने के बाद ही यह निर्णय करना चाहिए कि किस खास रोजगार में अपनी दिलचस्पी भी है और लाभ भी रहेगा। यह निर्णय लेने के बाद प्रखंड अधिकारी के पास आवेदन पत्र देना होता है। किन्हीं-किन्हीं पाठ्यक्रमों में प्रार्थियों की संख्या अधिक होने के कारण संभव है कि फौरन दाखिला न मिले बल्कि कुछ दिन ठहरना पड़े। प्रशिक्षण के दौरान प्रशिक्षणार्थियों को कोई पैसा खर्च नहीं करना पड़ता। सारा खर्च केन्द्र और राज्य सरकारें करती हैं। प्रशिक्षण की अवधि कुछ महीनों की होती है—अलग-अलग पाठ्यक्रमों की आवश्यकता के अनुसार।

स्मरण रहे कि पिछले 15 वर्षों में देश के कृषि वैज्ञानिकों ने जो नई तकनीकें खोज निकाली हैं उनसे कृषि उत्पादन में आशातीत वृद्धि तो हुई ही है, ग्रामीण क्षेत्रों के सर्वांगीण विकास में भी बहुत तेजी से वृद्धि हो रही है, खास कर इस बात से कि अब देश के सभी 5 हजार ग्यारह विकास प्रखंडों में समन्वित ग्रामीण विकास योजना का कार्यान्वयन हो रहा है। ऐसे वातावरण में "ट्राइसेम" जैसी योजना का महत्व बहुत बढ़ जाता है। क्योंकि कृषि की नई तकनीकें हैं भी ऐसी कि प्रशिक्षण प्राप्त व्यक्ति उन से अपेक्षाकृत व अधिक लाभ उठा सकता है। कृषि के क्षेत्र में अन्न के साथ फल-फूल उत्पादन, मत्स्य पालन, पशु पालन, सिंचाई आदि सभी क्षेत्रों में नई तकनीकें विकसित हुई हैं जिनमें प्रशिक्षण की व्यवस्था की जा चुकी है या की जा रही है। कुछ विशिष्ट विधाओं की चर्चा यहां प्रासंगिक रहेगी।

उन्नत किस्म की संकर गायों की पैदाइश और परवरिश, ताकि वे अपनी पूरी क्षमता के अनुरूप दूध दे सकें, मत्स्य पालन के क्षेत्र में जो नई क्रांति हुई है उसका प्रसारण अधिक संख्या में अपेक्षाकृत बड़े आकार के अंडे देने वाली मुर्गियों का पालन, फलों और फूलों के उन्नत किस्मों को व्यावहारिक रूप में किसानों के बीच लोकप्रिय बनाने का काम, उन्नत बीजों का उत्पादन, सिंचाई के पम्पों का रख-रखाव या इस तरह के काम जैसे रेडियो-सैटों की मरम्मत, बिस्कुटों का उत्पादन, साबुन, चमड़े या लोहे या काठ के सामानों का उत्पादन—ये ऐसे अनेक क्षेत्र हैं जिनमें प्रशिक्षित व्यक्तियों के लिए आमदनी बढ़ाने के अच्छे अवसर बने हैं और नए आयाम सामने आए हैं। यह अच्छा निर्णय है कि समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम और 'ट्राइसेम" जैसा कार्यक्रम एक साथ ही कार्यान्वित हों। वे एक दूसरे के पूरक हैं। इनमें से कोई भी एक कार्यक्रम दूसरे कार्यक्रम के बिना आशातीत सफलता से लागू नहीं हो पाएगा। एक साथ लागू करके ही इन कार्यक्रमों का वास्तविक उपयोग स्पष्ट होगा और युवाओं को इनके महत्व की जानकारी मिलेगी। □

(आकाशवाणी, सामयिकी से साभार)

केन्द्र के समाचार (पृष्ठ 40 का शेषांश)

विश्व बैंक परियोजना के अन्तर्गत 209.86 लाख रु० की लागत से पंजाब में टांडा उरमार के स्थान पर 20 हजार टन क्षमता के गोदाम का निर्माण किया जाएगा। 25 हजार टन की क्षमता के एक सहायक भवन का निर्माण भी किया जाएगा। कोटकपुरा में लगभग 30 हजार टन क्षमता के गोदाम का निर्माण किया जाएगा। इसके साथ एक सहायक भवन का भी निर्माण किया जाएगा। इन निर्माण कार्यों पर 167.52 लाख रु० की लागत आएगी। हरियाणा में कैथल में 30 हजार टन क्षमता का गोदाम बनाया जाएगा। इस पर 184.60 लाख रु० की लागत आएगी। सभी गोदाम पूर्व-निर्मित गोदामों जैसे होंगे।

2 लाख ग्रामीण युवकों को प्रशिक्षण

सन् 1982-83 के दौरान राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम के अंतर्गत 30 से 40 करोड़ जन दिनों के लिए अतिरिक्त रोजगार के अवसर उपलब्ध कराए जाएंगे।

चालू वित्त वर्ष के दौरान अपना काम-धन्धा शुरू करने के लिए ग्रामीण युवकों को प्रशिक्षण योजना के अन्तर्गत लगभग 20,000 युवकों को प्रशिक्षण देने का प्रस्ताव है।

ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार अवसरों को उपलब्ध कराने के उद्देश्य से बनाई गई इस योजना के अन्तर्गत शिक्षित तथा अशिक्षित दोनों ही श्रेणी के युवकों को लाभ मिल सकेगा। बैंक भी अपना काम-धन्धा स्वयं शुरू करने वाले युवकों को सहायता देने के लिए अपनी सेवाएं प्रदान कर रहे हैं। □

स्थान तो हमारा एक ऐसा प्रदेश है जहां यह कथन सार्थक होता है "सूखी धरती प्यासा इंसान, इसी का नाम है राजस्थान"। जैसलमेर आदि इलाकों में तीन-तीन सौ, चार-चार सौ फुट की गहराई पर पानी मिलता है और कहीं-कहीं तो यह इतना विषैला होता है कि पीते ही घातक बीमारियां लग जाती हैं। नारू आदि रोगों का प्रकोप अशुद्ध जल पीने से ही होता है। ऐसी स्थिति न सिर्फ राजस्थान में बल्कि देश के अनेक भागों में पाई जाती है। इस समस्या से जूझने के लिए हमारी सरकार ने समस्याग्रस्त गांवों को 1985 तक शुद्ध पेयजल उपलब्ध कराने का दृढ़ संकल्प कर लिया है और इस काम पर लगभग 2000 करोड़ रुपये की राशि खर्च करने की व्यवस्था की गई है। जहां तक देश में स्वास्थ्य सुविधाएं उपलब्ध करने का संबंध है, देश के अधिकांश क्षेत्रों में स्वास्थ्य केन्द्र खोल दिए गए हैं और स्वास्थ्य रक्षा कार्यकर्त्ता नियत कर दिए गए हैं। गांवों में कहीं-कहीं अस्पताल भी खोल दिए गए हैं। सफाई व्यवस्था के लिए स्वच्छ शौचालयों का बन्दोबस्त किया गया है। चालू योजना में सफाई-स्वच्छता सम्बन्धी कार्यक्रमों पर करोड़ों रुपये की राशि खर्च करने की व्यवस्था है। ग्रामीणों के स्वास्थ्य की समस्या, गरीबी, भुखमरी, अशिक्षा, कुपोषण आदि से भी जुड़ी हुई है। स्वास्थ्य का अर्थ केवल नीरोगी होना ही नहीं, बल्कि व्यक्ति का स्वास्थ्य ऐसा हो कि वह अपनी शारीरिक क्रिया से लोगों के लिए अधिक से अधिक हित-साधक बन सके। यह ठीक है कि गरीब ग्रामीणों को गरीबी और भुखमरी से छुटकारा दिलाने की अनेक योजनाएं चालू हैं परन्तु इन योजनाओं का लाभ उनको उतना नहीं मिल रहा जितना मिलना चाहिए क्योंकि इनके लिए नियत अधिकांश राशि बीच में ही हड़प ली जाती है। अतः जरूरत इस बात की है कि योजनाओं को इस तरह अमल में लाया जाए जिससे ग्रामीण गरीबों को इनका पूरा लाभ मिल सके।

गांवों में कुपोषण से भी अधिकांश लोग बीमारियों का शिकार होते हैं। पोषाहार का अर्थ यह नहीं कि भरपेट खाना मिले, बल्कि यह है कि ऐसा आहार हो जिससे अच्छी शारीरिक स्थिति बने और हमारे गरीब से गरीब लोग इस प्रकार का संतुलित आहार प्राप्त कर सकें जो मानव शरीर की क्रियाओं के आवश्यकतानुसार पोषण-मानों को प्रदान करने वाला हो तथा जो कम से कम खर्चीला हो ताकि लोगों का शारीरिक और मानसिक दृष्टि से अच्छा विकास हो सके।

पंचायती राज

देश में पंचायती राज की स्थापना इस उद्देश्य से की गई थी कि ग्रामवासियों को ग्राम्य विकास कार्यों में शामिल किया जा सके, उनके सहयोग से ग्राम्य विकास योजनाओं को कार्यान्वित किया जा सके और उनके रूढ़िग्रस्त विचारों में परिवर्तन लाया जा सके। परन्तु पंचायतें स्वार्थी लोगों के चंगुल में फंस गईं और लड़ाई-झगड़ों का अखाड़ा बन कर रह गईं। बाद में उन्हें अधिक सक्षम, सबल और ग्राम्य विकास के लिए अधिक उपयोगी बनाने के ध्येय से बलवन्त राय मेहता कमेटी की सिफारिशों के आधार पर पंचायती राज की त्रिस्तरीय प्रणाली लागू की गई परन्तु वह भी अधिक कारगर सिद्ध न हो सकी। इसका कारण स्पष्ट है कि पंचायती राज को देश के संविधान में समुचित स्थान प्राप्त नहीं है। ग्राम्य विकास कार्यक्रमों में ग्रामीणों का समुचित सहभाग तभी प्राप्त हो सकता है जब पंचायतों को समुचित अधिकार और संविधान में समुचित स्थान प्राप्त हो। अभी हाल में उत्तर प्रदेश में पंचायती राज संस्थाओं के चुनाव कराए गए हैं। वैसे तो इन चुनावों के अवसर पर हिंसात्मक घटनाएं घटी हैं परन्तु उतनी नहीं जितनी कि पहले इन चुनावों के अवसर पर होती थीं। हजारों प्रधान निर्विरोध चुने गए हैं। इससे लगता है कि अब हमारा ग्रामीण लोकतंत्र के लिए शिक्षित होता जा रहा है और हमारी पंचायतीराज संस्थाएं बल पकड़ती जा रही हैं।

ग्रामीण विकास में बाधक तत्व

हमारा समाज अन्ध-विश्वासों, रूढ़ियों, छुआछूत, दहेज, मद्यपान आदि सामाजिक कुरीतियों से जकड़ा हुआ है। गांवों में विज्ञान के प्रकाश से कृषि क्रांति तो आई परन्तु इन कुरीतियों से समाज को मुक्त नहीं किया जा सका। शादी-विवाहों के अवसर पर गन्दी प्रथाओं का मनाया जाना, दहेज का लेना-देना, छोटे-छोटे बच्चों की शादी कर देना, विधवाओं को बुरी निगाह से देखना, बीमारी-हारी को भूतप्रेतों का प्रकोप समझना और उनसे मुक्ति पाने के लिए ओझाओं की शरण में जाना तथा छुआछूत, जातिवाद, साम्प्रदायिकता आदि ऐसी सामाजिक बुराइयां हैं जिनसे विकास में बाधा उत्पन्न होती है। आज से तीस-पैंतीस वर्ष पहले गांवों में कोई शराब का नाम भी नहीं जानता था परन्तु अब जाकर देखिए, वहां शराब की नालियां बह रहीं हैं और इससे वहां के लोगों के खानपान, आचार-विचार बिगड़ गए हैं। ऐसी स्थिति में जरूरत इस बात की है कि इन सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध जोरदार अभियान शुरू किया जाए। हमारे प्रचार के माध्यम—रेडियो, टेलीविजन, समाचारपत्र आदि इन सामाजिक बुराइयों के उन्मूलन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकते हैं। स्वच्छ, सबल तथा प्रगतिशील सांस्कृतिक समाज की स्थापना के लिए सामाजिक बुराइयों का उन्मूलन बड़ा जरूरी है। □

RN 708/57
P & T Regd. No D (DN) 98
Licenced under U (D)-55 to
post without pre-payment at Civil Lines Post Office, Delhi.

ये ही तो विकास-रथ के वाहक हैं ।

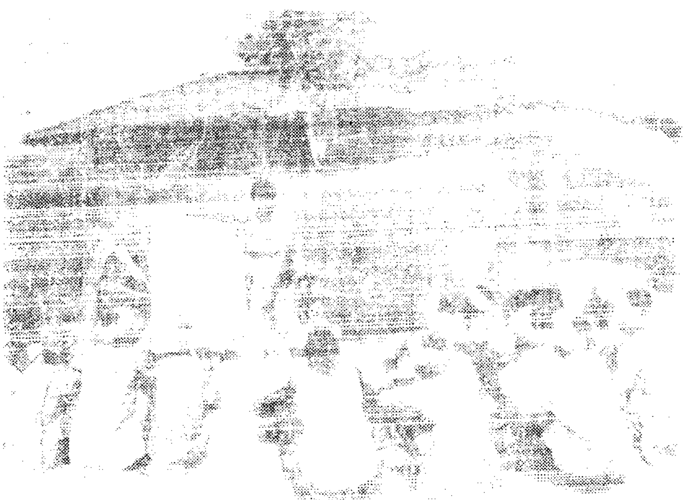

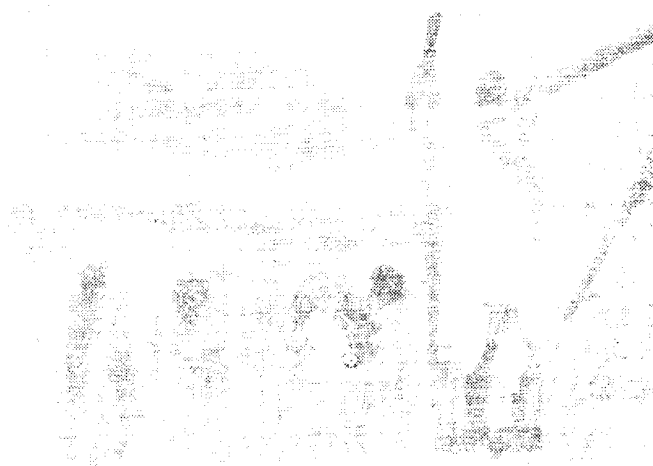

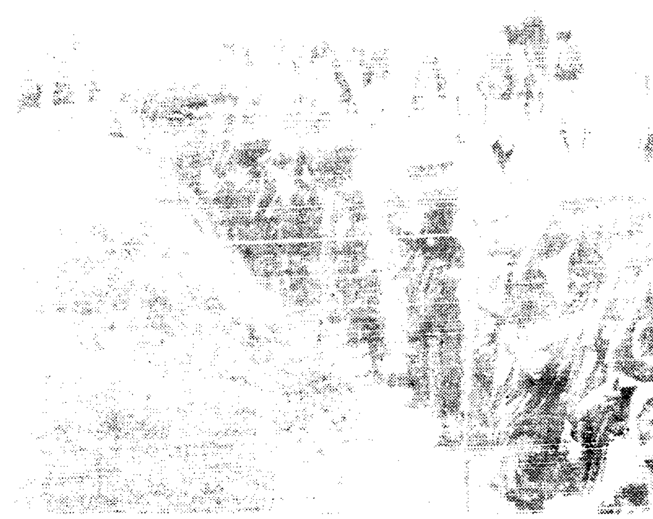

निदेशक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001 द्वारा
प्रकाशित तथा प्रबन्धक, भारत सरकार मुद्रणालय, फरीदाबाद द्वारा मुद्रित ।